योगविद्या

वर्ष 15 अंक 6
जून 2026

हरिः ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

© Bihar School of Yoga 2026

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं प्लेट : भारत योग यात्रा, 2026

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

शिक्षा

शिक्षा का तात्पर्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास से है। कलात्मक, वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक शिक्षा द्वारा मस्तिष्क, हृदय एवं हाथों का प्रशिक्षण होना चाहिए। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास होना चाहिए। तभी क्रमविकास की गति तेज होगी।

शिक्षा इस प्रकार सुनियोजित होनी चाहिए कि इससे सादा जीवन और उच्च विचार की संस्कृति विकसित हो सके। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थी को अपने वातावरण से समायोजन बैठाने, जीवन-संघर्षों का सामना करने तथा आत्म-साक्षात्कार प्राप्त करने हेतु सहायक हो।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित

स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

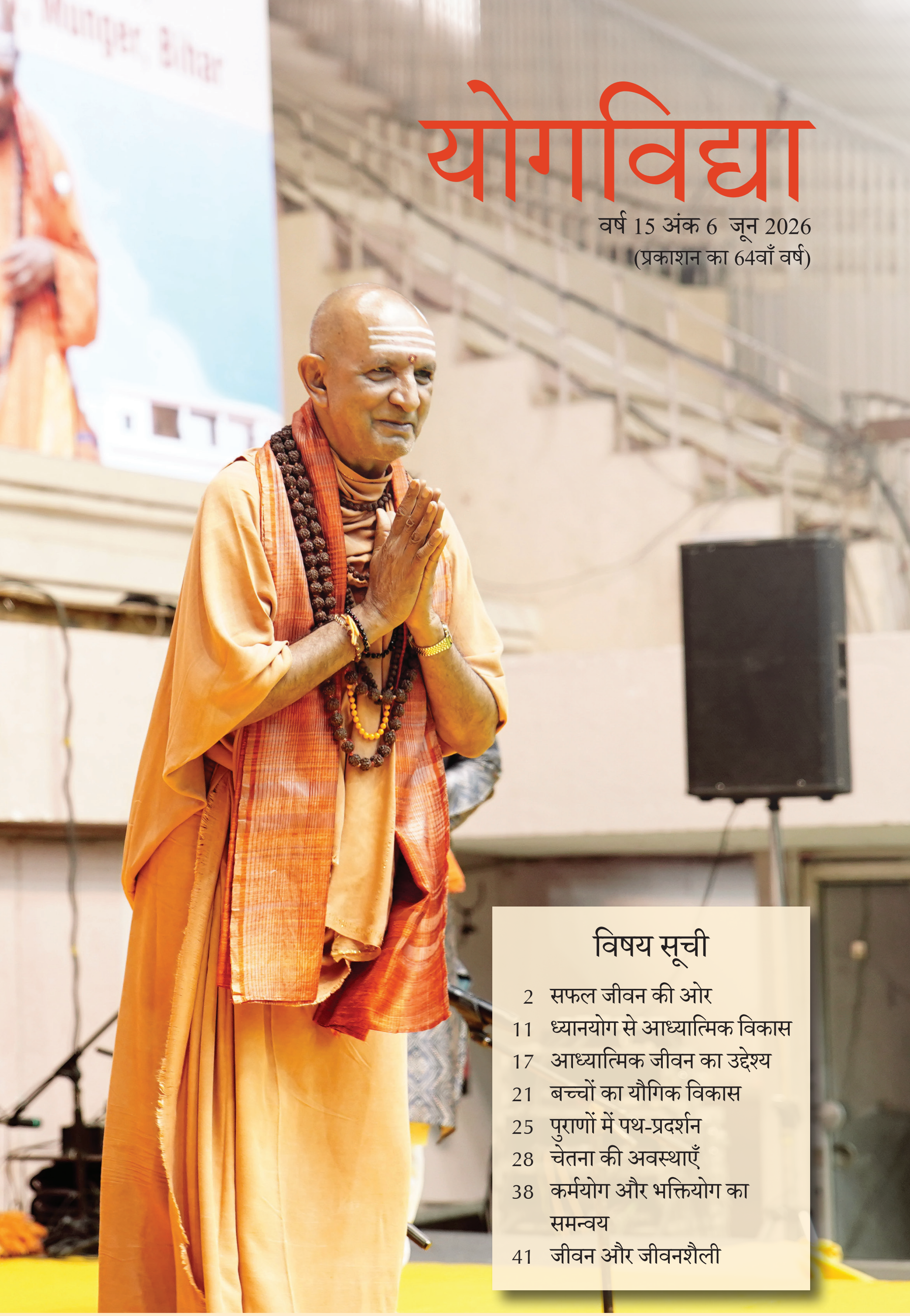

योगविद्या

वर्ष 15 अंक 6 जून 2026
(प्रकाशन का 64वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 सफल जीवन की ओर
11 ध्यानयोग से आध्यात्मिक विकास
17 आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य
21 बच्चों का यौगिक विकास
25 पुराणों में पथ-प्रदर्शन
28 चेतना की अवस्थाएँ
38 कर्मयोग और भक्तियोग का समन्वय
41 जीवन और जीवनशैली

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

सफल जीवन की ओर

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

संसार में बहुत-से लोगों का, यहाँ तक कि शिक्षित कहे जाने वाले व्यक्तियों का भी जीवन में कोई निश्चित लक्ष्य नहीं होता। फल यह होता है कि वे लोग इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, जैसे समुद्र में लकड़ी का एक टुकड़ा चपल लहरों के साथ निराधार इधर-उधर भटकता है। आज के जनसमुदाय को अपने कर्तव्य का यथार्थ ज्ञान नहीं है। बहुत-से विद्यार्थी अपनी बी.ए. और एम.ए. की पढ़ाई खत्म कर लेते हैं, पर आगे क्या करना है, इसका उन्हें पता नहीं रहता। अपनी प्रकृति के अनुसार किसी अच्छे उद्यम को चुनने की शक्ति उनमें नहीं है, जिससे वे जीवन को किसी आधार पर खड़ा कर सकें। इसलिए वे आलसी बन जाते हैं और किसी ऐसे कार्य को करने में अयोग्य सिद्ध होते हैं, जिसमें साहस, कुशलता, चतुराई और कुशाग्र बुद्धि की आवश्यकता होती है। इस तरह उनका समय बरबाद होता जाता है और सारा जीवन उदासी, निराशा और दुःख में बीतता है। उनके पास शक्ति है, बुद्धि भी है, पर कोई निश्चित लक्ष्य या ध्येय नहीं और न जीवन का कोई कार्यक्रम ही है। इसलिए उनका जीवन असफलता का प्रतीक बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को प्रथमतः अपने जीवन के लक्ष्य का उचित ज्ञान होना चाहिए। उसके बाद कार्य करने का एक ऐसा ढंग निकालना चाहिए, जो अपने ध्येय की सफलता के अनुकूल हो।

सफलता के लिए व्यावहारिक कदम

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कड़ी मेहनत तो जरूर करनी होगी, साथ-साथ आदर्श भी निश्चित होना चाहिए और जीवन में हर क्षण उसी आदर्श के अनुसार कर्म करना चाहिए। लड़खड़ाते कदमों से दस साल बाद या अभी इसी क्षण तुम अपने लक्ष्य को ठीक तरह से समझ सकते हो, यह कोई बड़ी बात नहीं, किन्तु अपना एक आदर्श ध्येय अवश्य होना चाहिए, तभी संकल्प का विकास किया जा सकता है।

प्रारम्भ में अपनी स्मृति को समुन्नत करो। इच्छित व्यायाम करो और इसमें नियमित रहो। प्रतिदिन का वृत्तान्त रखो और वह भी मन में ही। यह मुख्य है। केवल किताबों के पन्नों को रंगने से काम नहीं चलेगा। यदि तुम

जल्दी आत्म-सुधार करना चाहते हो, यदि तुम एक सच्चे मनुष्य बनना चाहते हो, तो सभी शिक्षाओं को आचरण के साँचे में ढालो। तुम अपनी गल्तियों को सुधार सकते हो। मैं तुमको शीघ्र ही एक सफल, व्यावहारिक मनुष्य बना देना चाहता हूँ।

यदि तुम बहुत इच्छुक और लगन के पक्के हो, तो स्मृति की उन्नति के अभ्यास को केवल तीन महीनों में पूर्ण कर सकते हो। मध्यम श्रेणी के व्यक्ति के लिए छः माह का समय पर्याप्त है और तीसरे दर्जे के साधक के लिए साल भर इस अभ्यास के लिए पर्याप्त है। इस प्रकार जब तुम स्मृति की उन्नति कर लोगे, तो संकल्पोन्नति का बीड़ा उठा सकोगे।

जब स्मृति के विकास से कुछ बल प्राप्त होने लगेगा, तब संकल्पोन्नति में अधिकाधिक प्रेरणा मिलेगी। तुम्हें अभ्यास में प्रसन्नता प्राप्त होगी और एक प्रकार का आनन्द अनुभूत होगा। तुम्हारे प्रत्येक स्नायु में संकल्प का प्रवाह संचरित होगा। इससे तुमको उत्साह और साहस की प्राप्ति होगी। अतः

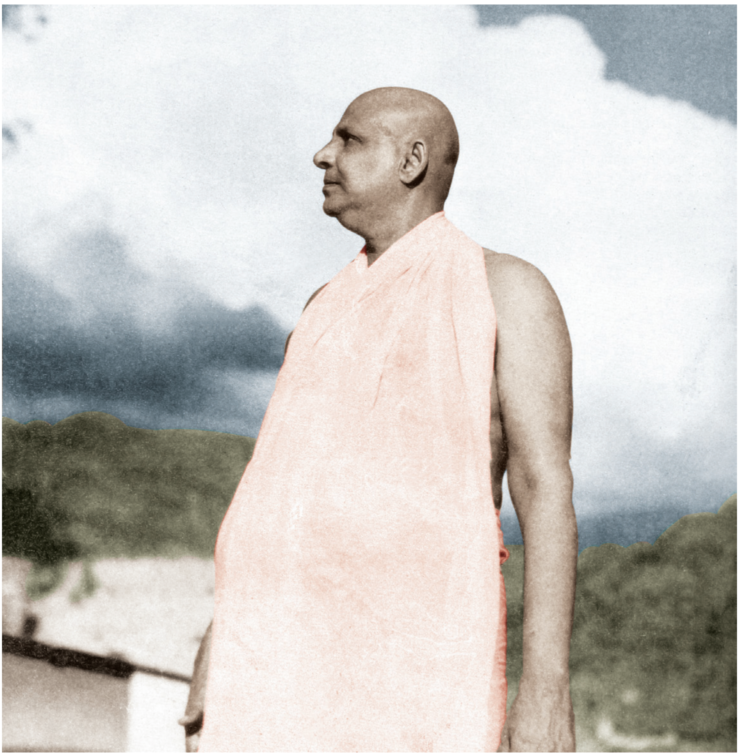

शान्तिपूर्वक और दृढ़ता से अपनी प्रतिज्ञा का पालन करते रहो। अपनी प्रतिज्ञा के अभिप्राय को अच्छी तरह समझ लो और सदा याद रखो। धीरे-धीरे भावना प्रत्यक्ष होती जाएगी। हतोत्साह तो कभी होना ही नहीं चाहिए। तुमको अपने पुराने संस्कारों से युद्ध करना पड़ेगा। अतः धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। धैर्य, ध्यान, सहन-शक्ति, मन की साम्यता, सावधानी आदि गुणों के विकास की चेष्टा करनी चाहिए। यह जान लो कि संकल्पों के विकास के लिए इन गुणों का विकास अनिवार्य है। जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष नहीं पनपता, उसी प्रकार इन गुणों के बिना संकल्प की उन्नति नहीं हो सकती।

ध्यान का भी विकास करो। तीन माह तक संकल्प साधना करो। इस काल में तुमको आन्तरिक बल का अनुभव होगा और वे कार्य जो कुछ काल पूर्व कठिन प्रतीत होते थे, अब आसानी से किये जा सकेंगे। तुम यह भी अनुभव करोगे कि तुम्हारा मन स्थिर होने लग गया है या हो ही गया है। पहले जो विचार तुम्हारे मन को सहज ही उद्विग्न कर देते थे, वे अब वैसा नहीं कर पायेंगे। कठिन-से-कठिन कार्य को अब तुम सरलता से कर पाओगे और किसी भी कार्य में शान्ति को निभा सकोगे। अब तुम किसी कार्य को अपने हाथों में लेते हो तो आत्म-विश्वास से भरपूर दिखते हो। तुम्हारी वाणी में शक्ति का आविर्भाव हुआ दिखता है। तुम्हारे व्यक्तित्व में ही परिवर्तन आ गया है। तुम्हारी मुस्कान में एक विशेष आकर्षण है। अब बहुत लोग तुम्हारी उपस्थिति में प्रभावी व्यक्तित्व का अनुभव करते हैं। तुम्हारे मित्र तुम्हारे मुखमण्डल पर ज्योति की आभा की उज्ज्वल चमक पाते हैं।

मन को स्थिर करने का अभ्यास संकल्प और स्मृति की साधना के साथ-साथ चलना चाहिए। मन की एकाग्रता से साधना में सफलता मिलती है। मन एकाग्र हुए बिना साधना में उन्नति नहीं हो सकती है। हर रोज प्रातःकाल आधे-एक घण्टे मन को एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए। मन की एकाग्रता के लिए एक आध्यात्मिक आधार की आवश्यकता है। यह याद रखो कि मन को केन्द्रस्थ करने का अभ्यास तुम केवल संकल्प और स्मृति के विकास के लिए ही नहीं करते हो, बल्कि ईश्वर-दर्शन के लिए भी करते हो। वास्तव में ध्येय तो यही है। इसको कभी न भूलो।

अपनी मनोनुकूलता के अनुसार मन को एक केन्द्र पर स्थापित कर दो। भगवान कृष्ण, राम, शिव, ईसा मसीह, महात्मा बुद्ध, पैगम्बर मुहम्मद – किसी एक के रूप पर अपने मन को स्थिर कर सकते हो। यही एकाग्रता, संकल्प

और स्मृति की उन्नति में सहायक होगा। मन की एकाग्रता के अनुभवों का लेखा एक डायरी में लिखते रहो। प्रति-सप्ताह या प्रति-माह डायरी के पिछले पन्नों को देखते भी रहो।

चौथी बात है गुणों के विकास की। चरित्र-निर्माण सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन करो, उससे तुम बहुत प्रकार के गुणों की साधना के तरीकों को सीख सकोगे। जो गुण तुममें नहीं है, उसी की साधना करो। क्रम से साहस, दया, विश्वप्रेम, भद्रता, सहिष्णुता, संतोष, निष्कपटता और ईमानदारी आदि गुणों की साधना करो। एक-एक महीने के लिए एक-एक गुण के विकास का निश्चय कर लो और उसका क्रमिक विकास करो। धीरे-धीरे वह गुण तुम्हारे चरित्र में ढल जाएगा। सच बात तो यह है कि जब तुम एक गुण का विकास कर लेते हो, तो बहुत-से गुण अपने आप तुममें आ जाते हैं। अगर तुमने नम्रता और साहस का विकास कर लिया है, तो दूसरे सहायक गुण स्वतः प्रत्यक्ष होकर तुम्हारे चरित्र में साथ-साथ ढल जाएँगे। यदि तुम ब्रह्मचर्य और सत्य में स्थित हो गये, तो बहुत-से गुण स्वतः तुममें अवतरित हो जाएँगे। विनम्रता, उत्साह, ब्रह्मचर्य और सत्यता – इन चारों गुणों में से किसी एक को विकास के लिए चुन लो।

पाँचवीं बात है अवगुणों के उन्मूलन की। वैसे तो सद्गुणों के विकास से ही दुर्गुणों का मूलोच्छेदन हो जाएगा, किन्तु अच्छा यह है कि दुर्गुणों के दमन का सीधा उद्योग भी किया जाए। उनका दमन हो जाने पर सद्गुणों का विकास द्रुत गति से होगा। उस अवस्था में सफलता आसान और निश्चित हो जाती है। अगर तुम काम-वासना, क्रोध या अभिमान को हटा सके, तो सब अवगुण आप-से-आप लुप्त हो जाएँगे। सभी अवगुण अहंकार के सेवक हैं। अगर अहंकार का नाश हो जाए, तो सारी सेना भयातुर होकर भाग जाएगी। सभी अवगुणों का गर्भ क्रोध है। अगर क्रोध का नाश कर दिया जाए, तो अन्य अवगुण लापता होते जाएँगे। इसलिए अहंकार और क्रोध के आक्रमण का प्रतिकार करो।

छठी बात जो ध्यान में रखने की है, वह है इन्द्रिय-संयम। यदि इन्द्रियाँ उपद्रवी हैं तो मन की एकाग्रता स्थापित नहीं की जा सकती। अतः सावधानी से प्रत्येक इन्द्रिय के कार्यकलापों का निरीक्षण करते रहो तथा मौन-अभ्यास, उपवास, त्राटक, ब्रह्मचर्य, प्रत्याहार, अपरिग्रह और दम आदि सुन्दर तरीकों से उनका मार्ग भी अवरुद्ध करते रहो। इन्द्रियों के कारण ही तुम्हारा मन बहिर्मुख हो जाता है और इन्द्रियाँ ही मन की गति को अन्तर्मुख नहीं होने देतीं। अतः इन्द्रियों को वश में करने का अर्थ है, मन को वशीभूत करना।

सातवीं बात जो ध्यान में रखने योग्य है, वह है शारीरिक उन्नति। मैं पुनः याद दिलाता हूँ कि शारीरिक उन्नति के बिना कोई भी उन्नति सम्भव नहीं है। अगर तुम्हारी शरीर-प्रकृति पुष्ट और स्वस्थ नहीं है, तो इस दुनिया में तुम कोई भी सुन्दर कार्य नहीं कर सकोगे। अतः नियमित व्यायामों से अपने शरीर को तेजस्वी बनाये रखो।

आठवीं बात है अपनी दैनन्दिनी रखने की। अगर तुम शीघ्र उन्नति चाहते हो तो एक डायरी रखो, उसमें अपने पूरे दिन का ब्योरा अंकित करो। उस में जो कुछ अंकित किया जाए, वह विवेक और सत्यशीलता से किया जाए। यदि तुम स्वयं को इन साधनों से सुसज्जित कर लो, तो संसार के शक्तिशाली सम्राट् बन सकते हो। तुम आरोग्य, धन, आध्यात्मिक सुख और दीर्घायु की प्राप्ति कर सकते हो।

मजबूत मन की ओर

मैंने संकेत दे दिये, किन्तु अभ्यास की जिम्मेदारी तुम पर निर्भर है। तुमको स्वयं सुचारु रूप से कार्य करना होगा। भूख लगने पर तुम्हें स्वयं ही भोजन करना पड़ता है, दूसरे के भोजन करने से तुम्हारी भूख नहीं मिटा करती। प्यास लगने पर तुम स्वयं जल पीकर ही प्यास बुझा सकते हो, दूसरे के पीने से तुम्हारा काम नहीं चलेगा। अब अमरत्व का अमृत भी स्वयं पियो और आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति करो। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के सहभागी बनो। एक साल तक अभ्यास करते-करते ये सद्गुण तुम्हारे चरित्र में समाहित हो

जाएँगे और तुम्हारा जीवन-निर्माण इनके आधार पर ही होने लगेगा। अतः जब तक पूर्णता की प्राप्ति न हो, इनका अभ्यास करते रहो।

ध्यान का नियमित अभ्यास, घृणा को सहना, अप्रसन्नता और चिड़चिड़ेपन का दमन, विपत्तियों में धीरता, तपस्या, उपवास, प्रकृति-विजय, तितिक्षा, दृढ़ता, सत्याग्रह तथा दैनन्दिनी रखना – ये सब संकल्प के विकास को सुलभ बनाते हैं। मनुष्य को चाहिए कि वह दूसरों की बातों को भी ध्यानपूर्वक सुने, भले ही वे बातें दिलचस्प और रोचक न हों। क्रोध के कारण अधीरता का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। धैर्यपूर्वक सबकी बातें सुननी चाहिए, तभी दूसरों के हृदय को जीता जा सकता है। जो काम तुम्हें अच्छा न लगे, यदि दूसरे उसे चाहते हों तो करना चाहिए। इससे संकल्प का विकास होता है। आरम्भ में वे काम तुम्हें दिलचस्प नहीं लगेंगे, किन्तु कुछ दिनों के अनन्तर उनमें से नवीन आनन्द बरसने लगता है।

विषम परिस्थितियों की शिकायत मत करो। जहाँ-कहीं तुम रहो और जहाँ-कहीं तुम जाओ, अपने लिए अनुकूल मानसिक जगत् का निर्माण करो। जहाँ-कहीं तुम जाओगे, वहाँ कठिनाइयाँ और हानियाँ अवश्य मिलेंगी। तुम उनका निवारण तभी कर सकते हो, जब तुम्हारा मानसिक जगत् एकदम अप्रभावित हो। विषम परिस्थितियों में रहकर जो मनुष्य अपने को शान्त, दृढ़ और संयमी बनाये रखता है, वही सफलता के सही अर्थ को स्पष्ट करता है।

सुख और सुविधाओं को पाने से तुम मजबूत नहीं बन सकोगे। तुम्हारा मन निर्बल और परिस्थितियों का दास बन जाएगा। अतः सभी स्थानों का सदुपयोग करो। 'यह जगह ऐसी है, वह व्यक्ति ऐसा है' इत्यादि शिकायतें करने की आदत त्याग दो। वातावरण, परिस्थिति या व्यक्ति से कुछ नहीं होता, यह केवल अपने मन की अवस्था का प्रतिबिम्ब है। यदि तुम्हारे मन में शान्ति, सरलता और पवित्रता है, तो तुम किसी भी स्थान में एक ही प्रकार का महान् आनन्द अनुभव करोगे, इसमें संदेह नहीं है। अतः हर स्थान में अपने लिए नवीन और अनुकूल मानसिक जगत् का निर्माण करो। किसी भी वस्तु से मन को उद्विग्न न होने दो। सच पूछो तो तुम हिमालय प्रदेश में गंगोत्री के निकट भी राग-द्वेष पाओगे। तुम संसार के किसी भी हिस्से में एक आदर्श वातावरण या अनुकूल परिस्थिति नहीं पा सकोगे। काश्मीर शीतप्रधान सुन्दर प्रदेश है, लेकिन पिस्सू के कारण तुम तंग आ जाओगे, सोना मुश्किल हो जाएगा। बनारस संस्कृत-विद्या का महान् केन्द्र है, लेकिन गर्मी की ऋतु में यह स्थान

गरम हवा के लिए प्रसिद्ध है। हिमालय में उत्तरकाशी सुन्दर स्थान है, लेकिन तुम वहाँ तरकारी या फल नहीं पा सकते। इसी प्रकार यह संसार सुन्दर और असुन्दर, अनुकूल और प्रतिकूल का मिश्रण है, इसे हर समय याद रखो। किसी भी स्थान में और किसी भी अवस्था में अपने को प्रसन्न रखने की चेष्टा करो। तुम्हारे व्यक्तित्व में इससे बल और तेज उतरेगा। यह एक महान् रहस्य है। इसे अपने हृदय में रखो और ऐसे साधन को खोजो, जिसमें अनन्त प्रसन्नता तथा शाश्वत सुख है। तुम किसी भी कार्य में सफल बनोगे और किसी भी कठिनाई पर विजय की प्राप्ति कर सकोगे।

अवचेतन मन का प्रशिक्षण

मन की एकाग्रता का अभ्यास संकल्प की उन्नति में अति सहायक है। मन का क्या स्वभाव है, इसका अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त कर लो। मन किस तरह इधर-उधर घूमता है और किस तरह अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर दिया करता है – यह सब अच्छी तरह सोच-समझ कर हृदय में रखना चाहिए। मन के चलायमान स्वभाव को वश में करने के लिए आसान और प्रभावशाली तरीकों को खोज निकालना होगा। संकल्प की उन्नति, मन की एकाग्रता का अभ्यास, स्मृति का विकास आदि सभी प्रयोग एक-दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं। इन सबका व्यवहार संकल्पोन्नति में सहायता देता है।

मिस्टर ग्लेडस्टोन ज्यों ही बिछावन पर जाते थे, उनको गहरी निद्रा आ जाया करती थी। महात्मा गांधी जी को भी यही अभ्यास था। वे जब चाहते, तभी उठ सकते थे। उन्होंने अपने अवचेतन मन को इस प्रकार प्रशिक्षित किया था कि वह उनकी आज्ञाओं का पालन तत्पर होकर किया करता था। अवचेतन मन निरन्तर अभ्यास से आज्ञा का तत्पर पालन किया करता है। तुमको भी इस प्रकार का अभ्यास करना होगा। प्रायः देखा गया है कि लोग बिछावन पर करवट बदलते-बदलते रात काट देते हैं, उनको निद्रा नहीं आती। जहाँ मनुष्य को एक घण्टे की गहरी निद्रा आयी कि वह निद्रा के पूरे विश्राम को पा लेता है और मन की शिथिल शक्ति पुनः जागृत एवं कार्यरत हो जाया करती है।

यही आदत नेपोलियन को भी थी। लड़ाई के मैदान में भी नेपोलियन स्वेच्छानुसार अश्व की पीठ पर ही निद्रा ले लेता था और तुरन्त ही नवीन बल पाकर रण में प्रविष्ट होता था। तुम भी अपने को इस प्रकार अभ्यस्त करो कि किसी भी विषम स्थिति में स्वेच्छानुसार सो सको और जाग भी जाओ।

डॉक्टरों, वकीलों और व्यापारी-वर्ग के लिए इच्छाशक्ति का अत्यन्त महत्त्व है। आज जीवन इतना विशाल और पेचीदा हो गया है कि उद्योगी लोग सोने के लिए पर्याप्त और उचित समय नहीं पा सकते हैं। जब कभी पाँच मिनट के लिए अवकाश प्राप्त हो, उन्हें एक स्थान पर कुछ देर के लिए आँखें बन्द कर निद्रा देवी की गोद में विश्राम लेना चाहिए। उनको इस निद्रा से पर्याप्त और प्रेरक विश्राम मिलेगा। तत्पश्चात् वे अपने आगे के कार्यक्रमों को स्थिर-चित्त होकर कर सकेंगे। उद्योगी लोगों के लिए इस प्रकार का अभ्यास वरदान के समान है। उन लोगों की नसों में तनाव और गुरुता आ जाती है। इस अभ्यास से वे अपने शरीर को विश्राम देने के लिए छोड़ सकते हैं। यदि इसका श्रद्धापूर्वक अभ्यास किया गया तो इसमें अनेक आश्चर्य निहित मिलेंगे।

डॉ. एनी बेसेंट चलती मोटर में सम्पादकीय नोट लिख लिया करती थीं। जो शक्तिशाली और विलक्षण व्यक्तित्व चाहते हैं, उन्हें प्रत्येक क्षण का उपयोग महान् कार्यों में करना चाहिए और मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लिए सचेष्ट रहना चाहिए। व्यर्थ की बातचीत सदा के लिए त्याग देनी चाहिए। समय के मूल्य का ज्ञान होना चाहिए। संकल्प में तेज तभी निखरने लगेगा, जब समय का उचित उपयोग किया जाए। व्यवहार और दृढ़ता, लगन और ध्यान, धैर्य और प्रयत्न, विश्वास और स्वावलम्बन मनुष्य को ख्यातिमान् बना देते हैं।

मन को सन्तुलित रखने में भले ही तुम पचासों चेष्टाओं में असफल हो जाओ, किन्तु धैर्य न खोना। इक्यावनवीं चेष्टा से तुम मन को सन्तुलित करने में सफल बन सकोगे। संकल्प को बल प्राप्त होगा। आरम्भ में असफलताओं के बावजूद भी हतोत्साह नहीं होना चाहिए। भयानक संकट आने पर भी मन का सन्तुलन नहीं खोना चाहिए, मन की वृत्ति में नीचता नहीं आनी चाहिए। मन को शान्त और उत्साही रखो। बहे हुए दूध पर चिल्लाने से क्या लाभ? घटना घट चुकी है, हँसकर विफलताओं का प्रतिकार करना होगा।

जो कुछ भी तुम करते हो, अच्छे ढंग से करो। याद रखो कि जो स्वस्थ नहीं, उसे रोग आघात सहना ही पड़ेगा। कठिनाइयों को उड़ा देने के तरीके खोज निकालो। मन को कभी उद्विग्न न होने दो। भावनाओं की प्रचुरता और बुलबुले के समान उठने वाली उत्तेजनाओं के प्रवाह में बह न जाओ। उनको वश में करो। आखिर संकट आया क्यों, यह झंझट हुआ कैसे – इस पर मनन करो और भविष्य में सावधानी से काम लो। परिस्थितियों पर विजय पाने के लिए अनेक प्रभावशाली और आसान तरीके हैं, उन्हें सीखो।

विवेकी बनो और दूरदर्शी भी। इस प्रकार विपत्तियों और दुर्घटनाओं पर विजय पायी जा सकती है। विफलताओं, दोषों और गल्तियों पर ध्यान देते हुए भी उनमें लीन न हो जाओ। ज्यों-ज्यों तुम्हारा संकल्प शुद्ध और महत्तर होता जाएगा, त्यों-त्यों सभी अवगुण स्वतः ही हटते जाएँगे।

कभी-कभी व्यावहारिक कठिनाइयाँ दुविधा में डाल देती हैं। तुम्हें हतोत्साह नहीं होना चाहिए। हिम्मत न हारो, बल्कि अपनी बुद्धि का उपयोग करो। चतुर तरीकों और सफल योजनाओं का आविष्कार करो। अपनी आन्तरिक शक्तियों को काम में लाओ। जब घर में आग लग जाती है तो तुम कितनी फुर्ती से काम में जुट जाते हो। किस प्रकार और कहाँ से यह दृढ़ता और स्फूर्ति आयी? पता नहीं चलता कि कहाँ से वह तेज और बल आया था। उस समय तुम्हें अन्य बातों का ध्यान नहीं रहता, तुम्हारा चित्त एकाग्र हो जाता है। अतः तुम सुन्दर व्यवस्थापूर्वक कार्य करने लग जाते हो और इस प्रकार अपने घर और अन्य कीमती वस्तुओं की यथासम्भव रक्षा कर पाते हो। जब बला टल जाती है तो कहते हो कि 'ईश्वर की रहस्यमय शक्ति उस समय मेरे अन्दर कार्य कर रही थी।' समय को निरर्थक न गँवाओ। जब एक बार कार्य का निश्चय कर लिया है तो दक्षतापूर्वक उसका सम्पादन करो। दीर्घसूत्रता समय का नाश कर देती है। दीर्घसूत्री व्यक्ति इस लोक और परलोक में कभी भी सफल नहीं हो पाता है।

अतः मन को अच्छे से प्रशिक्षित करो। निषेधात्मक विचारों को भूल जाओ। आत्मा की महिमा को जानो, उसकी शक्ति को पहचानो, उसकी गरिमा पर ध्यान करो। तुम्हारे मन, विचार, संकल्प और स्मृति की आड़ में और है ही क्या? केवल आत्मा ही आत्मा। वह सबमें व्यापक है, सबकी रग-रग में समायी हुई है। वह ज्ञान, आनन्द, शक्ति, सौन्दर्य, शान्ति, समृद्धि, कल्याण एवं सुख का भण्डार है – यदि यह जान जाओ, तो संकल्प दिव्य संकल्प बन जाएँगे।

ध्यानयोग से आध्यात्मिक विकास

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

शरीर, मन और बुद्धि के परे हममें से प्रत्येक व्यक्ति में एक आस्था है, एक शक्ति है और एक प्रकाश है जिसका एहसास हमें नहीं हो पाता। हम उसको अपने अनुभव में नहीं ला पाते। योग का उद्देश्य अपने इस केन्द्र को जानना है। शरीर, मन, बुद्धि और भावनाएँ, जहाँ तक हमारी जानकारी है, सभी बाह्य सत्ताएँ हैं। वे वास्तविक सत्ता नहीं हैं। चूँकि हम उस आंतरिक सत्ता की दृष्टि से काफी दूर हैं, अतः हम अपूर्ण हैं।

आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से योग के कई मार्ग हैं। उन सभी मार्गों में एक अति महत्त्वपूर्ण ध्यान-मार्ग की चर्चा करूँगा। बहुत-से लोग ध्यान की विधि जानना चाहते हैं। ध्यान-मार्ग ही परम पथ है। यह हमारे निजी अस्तित्व का अंश है। इसलिए सम्पूर्ण विश्व में लोग ध्यान-विधियों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। वर्तमान सदी में ही नहीं, बल्कि हजारों वर्ष पूर्व से हमारे मनीषियों ने उद्घोष किया है कि हमें अपनी बाह्य अनुभूतियों के पार जाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब हम बाह्य अनुभूति के पार जायेंगे तो हमें एक दूसरी उच्चतर अनुभूति प्राप्त होगी। उसे हम आध्यात्मिक अनुभूति, इन्द्रियातीत अनुभूति या आत्मानुभूति कह सकते हैं।

यद्यपि हम लोग ध्यान शब्द का उपयोग करते आ रहे हैं, लेकिन वास्तव में हम जो भी अभ्यास करते हैं, वह ध्यान नहीं है, बल्कि उस समय तो हम ध्यान की तैयारी कर रहे होते हैं। ध्यान का मतलब होता है – आत्म-सजगता या आत्म-चेतना। ध्यान करने वाले की या ध्यान प्रक्रिया की सजगता को हम ध्यान नहीं कह सकते। हमें ध्यान के लक्ष्य की सजगता, ध्यान करने वाले

ध्याता के प्रति सजगता और ध्यान की प्रक्रिया, इन तीनों का अतिक्रमण करना होगा। तब जाकर ध्यान सहज, स्वभाविक और सतत् हो पाता है।

ध्यान का लक्ष्य उच्च, दिव्य चेतना को विकसित करना है। यही चेतना जीवन की सभी गतिविधियों का नियंत्रण करती है। यह काम ठीक वैसे ही होता है जैसे किसी राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्यपाल उस राज्य का सारा कार्यभार अपने हाथों में लेता है और मंत्रीमंडल कार्यशील नहीं रहता। उसी प्रकार जब हम समझते हैं कि हमारा यह मन जीवन के कार्यों को भलीभाँति चलाने में सक्षम नहीं है, यह हमें निराशा, दुःख और कुण्ठाएँ दे रहा है तो हम क्षुब्ध होकर कहते हैं – 'नहीं-नहीं, यह मन ठीक संचालक नहीं है।' सीमित मन को उच्च शक्ति द्वारा स्थानान्तरित करना ही होगा, मगर समस्या यह है कि हमारे पास वह उच्च सजगता ही नहीं है। इसलिये अपनी अतीन्द्रिय चेतना को विकसित करने के लिये हम ध्यान का अभ्यास करते हैं।

ध्यान का अर्थ है पूर्ण जागरूकता, यह राजयोग की सातवीं सीढ़ी है। परन्तु राजयोग के अनुसार ध्यान का अभ्यास किया नहीं जाता है, बल्कि ध्यान की अवस्था स्वतः आती है। अपने शरीर, मन और भावनाओं को ध्यान के लिये तैयार कर लेने पर ध्यान स्वतः लग जाता है।

अपने मन को किसी एक वस्तु पर तब तक केन्द्रित नहीं कर सकते, जब तक कि आपका स्नायु संस्थान व्यवस्थित न हो गया हो, अथवा अन्य शारीरिक गड़बड़ी या असन्तुलन ठीक न हो गये हों। आपके अनुभव केवल मानसिक तत्त्वों पर निर्भर नहीं करते। ध्यान केवल मन की कार्यविधि पर निर्भर नहीं करता। शरीर भी अपनी भूमिका अदा करता है। यदि आपके शरीर में एड्रीनलिन का आधिक्य हो गया है या थायरॉयड हॉर्मोन का अधिक स्राव हो गया हो या यौन हॉर्मोन का अधिक मात्रा में स्राव हो गया हो या कॉर्टीसोन का कम या अधिक मात्रा में स्राव हो रहा हो अथवा अधिक अम्लता या अन्य शारीरिक असन्तुलन हो, तो ऐसी अवस्था में एकाग्रता का अभ्यास करने का कोई मतलब ही नहीं होता। ये शारीरिक अवरोध चेतना की शक्ति को संगठित नहीं होने देंगे। ये शक्ति को तितर-बितर कर देंगे। आप इन शारीरिक अवस्थाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। इसलिए योगी हठयोग, आसन, प्राणायाम और सन्तुलित भोजन की शिक्षा देते हैं।

इसी प्रकार यदि आपका स्नायु-संस्थान अव्यवस्थित है, चाहे वह शारीरिक कारणों से हो, भावनात्मक कारणों से हो, या स्थान विशेष के

कारण हो, तो आप चाहते हुए भी ध्यान नहीं कर सकेंगे। इसके बावजूद यदि आप बलपूर्वक ध्यान करने का प्रयास करेंगे तो आपको ठीक उसी तरह की अरुचिकर अनुभूतियाँ और भ्रान्तियाँ होंगी जैसी नशीली औषधियाँ सेवन करने से होती हैं।

अतः ध्यान योग का अभ्यास करने के लिये आपको विधिवत् प्रशिक्षण लेना आवश्यक है। साथ ही कुछ महीनों के अन्दर ही ध्यान में पारंगत होने की कामना भी नहीं करनी चाहिए। ध्यान योगी होना यानी पूर्ण अन्तर्मुखी चेतना का होना बड़ा कठिन है। हजारों वर्षों से बाह्य जगत् के प्रति अपनी चेतना को बनाये रखने के लिए हमें तैयार किया गया है और जब हम अपनी बहिर्मुखी चेतना को अन्दर की वास्तविकता की ओर मोड़ते हैं तब वह हमारे पूर्व प्रशिक्षित स्वभाव के प्रतिकूल होता है। हमें याद रखना होगा कि ध्यान में जो आन्तरिक चेतना होती है वह निम्न स्तर की चेतना नहीं होती, वह सम्मोहक चेतना भी नहीं है, वह निलम्बित चेतना भी नहीं है, यह वही चेतना है जिसका अनुभव अभी आप कर रहे हैं।

ध्यान योग में ध्यान करते समय आपको अपनी चेतना के आयाम में किसी प्रकार का दखल नहीं देना चाहिए और न ही अपने मन को दमित करना चाहिए। मन जो चाहता है उसी का अनुसरण करना चाहिए एवं अपनी चेतना को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचानी चाहिये। तब ध्यान के समय एक ऐसा क्षण आता है जब सभी वस्तुयें लुप्त हो जाती हैं। जहाँ न आप होते हैं, न देश और काल ही होता है। यही ध्यान योग है। ध्यान मात्र मानसिक क्रिया नहीं है। यह शरीर को प्रभावित करता है। इसका प्रभाव हृदय, पाचन संस्थान, हॉर्मोन-समूह तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों पर भी पड़ता है। यह भी देखा गया है कि ध्यान में मस्तिष्क की तरंगों का स्वरूप भी बदलता है।

ध्यान का प्रमुख लाभ यह है कि इससे मस्तिष्क के निष्क्रिय तथा अर्द्धसुप्त केन्द्र जागते तथा सक्रिय होते हैं। निश्चय ही प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य अपने मस्तिष्क के अज्ञात निष्क्रिय केन्द्रों को सक्रिय तथा आलोक-सम्पन्न बनाना है, ताकि जीवन आनन्दमय बने, ज्ञान और चेतना विकसित हो। ध्यान का सर्वसुलभ तरीका यह है कि अपने भीतर किसी वस्तु के प्रति सहज, निरंतर चेतना बनाई रखी जाये। इससे समूचा मस्तिष्क हरकत में आ जाता है। अतएव ध्यान योग का परम लक्ष्य मानव की समग्र चेतना को विकसित करना है।

ध्यान योग को समग्र चेतना का योग कहा जाता है। जब आपका मन किसी विषय को पकड़कर एकाग्रतापूर्वक उस पर चिन्तन करता है, तो उस अवस्था को ध्यान कहते हैं। मनुष्य का मन इतना चंचल और विक्षिप्त रहता है कि वह किसी वस्तु को उसके समग्र रूप में नहीं पकड़ सकता। इसलिए ध्यान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो पलक झपकते सिद्ध हो सके। इसके लिये वर्षों तक नियमित रूप से प्रतिदिन अभ्यास करना पड़ता है।

ध्यान में क्या होता है? क्या आप ध्यान में अपने जीवन को विस्मृत कर देते हैं? क्या आप यथार्थ से पलायन करते हैं? या क्या आप ध्यान में होश-हवास खो बैठते हैं? अनेक ऋषियों, मनीषियों तथा आधुनिक वैज्ञानिकों का यह अनुभूत निष्कर्ष है कि ध्यान की अवस्था में मन में महान् रूपान्तरण घटित होता है। आगे चलकर यही रूपान्तरण उसकी चेतना के उत्थान में सहायक होता है।

मनुष्य के दु:खों का कारण मात्र सामाजिक अथवा आर्थिक नहीं है। उसके दु:खी होने का कारण उसका अपना बीमार मन है। यदि आप दु:खी हैं तो समझिये कि आपके मन का आमूल रूपान्तरण और उपचार आवश्यक है

और इस कार्य के लिये केवल ध्यान योग ही रामबाण युक्ति है। हमेशा स्मरण रखिये कि ध्यान कोई निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं, बल्कि एक गत्यात्मक प्रक्रिया है और केवल गत्यात्मक प्रक्रिया मन में परिवर्तन ला सकती है। इससे मन अधिक सक्षम, मजबूत और सामंजस्यपूर्ण होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि ध्यान कैसे करें?

ध्यान का प्रारम्भ शरीर को तैयार करने से होता है। इसके अन्तर्गत तंत्रिका-तंत्र, हृदय, श्वसन-संस्थान, मस्तिष्क आदि सबकी तैयारी आवश्यक है। शरीर की तैयारी के निमित्त हठयोग का अभ्यास करना चाहिए। हठयोग को मात्र शारीरिक व्यायाम समझना भूल है। हठयोग वह अचूक युक्ति है, जिसके द्वारा हमारे अनुकम्पी तथा परानुकम्पी तंत्रिका तंत्रों में स्वस्थ संतुलन आता है। इसके अतिरिक्त आसन, प्राणायाम, मुद्रा तथा बंध के नियमित अभ्यास द्वारा ध्यान योग की तैयारी पूरी होती है। साथ ही कर्मयोग का जीवन यापन करते हुए अपने मन को संस्कारों के प्रभाव से मुक्त करके उसे शुद्ध करना होगा एवं भक्तियोग द्वारा, विशेषकर मंत्र-जप और कीर्तन के द्वारा मन को स्थिर कर लेना होगा।

हमें यह अच्छी तरह जान और समझ लेना है कि योग में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है ध्यान। ध्यान ही उत्तर है, ध्यान ही मार्ग है। ध्यान के द्वारा जब आप देहाध्यास से ऊपर उठ जाते हैं, जब आपको नाम और रूप का कोई बोध नहीं रह जाता, जब आप बीती यादों से ऊपर उठ जाते हैं और जब आपको एक ऐसी किसी चीज का स्पष्ट नहीं तो छायाभास भी मिलने लग जाता है तो समझ लीजिये कि आप सही रास्ते पर हैं।

वे लोग जो प्रकाश को देख सकते हैं, जो भीतर में ही शब्द एवं दिशा का अनुभव कर सकते हैं, वे सही रास्ते पर हैं। हम शरीर में रहते हैं, हमें शरीर की सजगता रहती है, लेकिन हम इसके ऊपर उठ नहीं सकते हैं जब तक कि हम गाढ़ी निद्रा में नहीं जायें। हमें एक ऐसे चेतन अभ्यास का पता पाना है जिसके द्वारा हम क्रमशः नाम तथा रूप के द्वैत अनुभव से ऊपर उठ सकें। हमें छलांग लगाकर अहं को पीछे छोड़ना पड़ेगा। अहं की स्थिति से ऊपर की छलांग ही समाधि है। निश्चिय ही यह कोई आसान काम नहीं है, परन्तु यह एक ऐसी चीज है जिसे प्राप्त करना वाञ्छित ही नहीं, अनिवार्य है। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति को ध्यान की गहराई उपलब्ध होनी चाहिये। ध्यान में जो हल्की अनुभूतियाँ होती हैं, वे स्थायी नहीं, अल्पकालीन होती हैं। उन अनुभवों को परिवर्तनों के एक क्रम से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक दिन, प्रत्येक सप्ताह वह अनुभव भिन्न

हो सकता है। ध्यान के सिलसिले में आपको जो सारे अनुभव प्राप्त होते हैं, वे अन्तिम अनुभव नहीं होते।

अनुभवों की एक क्रमानुसार शृंखला होती है, जो अंततः उस अनुभव का रूप धारण करती है, जिसे आत्मानुभव या आध्यात्मिक अनुभव, अद्वैतानुभव अथवा एकात्मता का अनुभव कहते हैं। इस समय तक जो अनुभव हमें उपलब्ध हुआ, और उस अनुभव के बीच जिसकी मैं चर्चा कर रहा हूँ, हजारों अनुभव हैं जो अध्यात्म प्रत्याशी को अवश्य ही प्राप्त होते हैं।

उसके लिये कतिपय विधि-विधान हैं, जिनको ध्यान कहते हैं। सारे आध्यात्मिक प्रयासों का लक्ष्य वही होना चाहिए। मैं आप लोगों से सदैव कहता रहा हूँ कि जीवन में सब कुछ तो बिल्कुल ठीक ही है, लेकिन वही अन्तिम नहीं है। आपको और भी कुछ चाहिए। उसे प्राप्त करने के लिये हम ध्यान को एक अचूक साधन मान लें और उसी के अभ्यास के द्वारा हम अपनी चेतना की शक्तियों का विकास करते चलें।

भोजन से अधिक महत्त्व ध्यान का है। निद्रा से अधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान है। जीवन के किसी भी आमोद-प्रमोद से अधिक आवश्यकता ध्यान की है। किसी भी तरह, किसी आकस्मिक कारण से, किसी की कृपा से अथवा सौभाग्य से यदि ध्यान के क्षेत्र में आपका एक कदम भी बढ़ जाये तो आप मानव नहीं, महामानव हैं।

ध्यान रहे, सिर्फ आँख बंद कर, विचार तरंगों को रोककर स्वप्नावस्था में प्रवेश कर जाना ध्यान नहीं है। बहुधा ध्यान के बदले लोग सम्मोहन की अनुभूति प्राप्त कर लेते हैं। वे ध्यान की साधना नहीं करते, सम्मोहन का अभ्यास करते हैं। वे मन का दमन करना चाहते हैं। वे मन को पददलित कर ध्यान को उपलब्ध करना चाहते हैं, जैसे लोग प्रायः अपने बच्चों के साथ करते हैं। भगवान के लिये वैसा मत करें।

यदि आप ध्यान के महत्त्व को स्वीकार करते हैं तो प्रतिदिन कम-से-कम आधा घण्टा समय आपको ध्यानाभ्यास के लिए देना चाहिए। ध्यान हमारी अनुभूति की गुणवत्ता में रूपान्तरण ला सकता है। केवल दिव्य अनुभूति ही नहीं, बल्कि साधारण दैनिक जीवन की अनुभूति की गुणवत्ता में भी बदलाव ला सकता है। परिवार में कोई दुःखद प्रसंग आने पर ध्यान द्वारा उसकी पीड़ा की सघनता को कम किया जा सकता है, और कोई सुखद प्रसंग आने पर आनन्दानुभूति की सघनता को बढ़ाया जा सकता है।

आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हजारों वर्ष पूर्व किसी राजा ने अपने मित्र से एक प्रश्न किया था और वह प्रश्न था कि युद्ध भूमि में, धर्म की भूमि में होने वाली लड़ाई का परिणाम क्या होगा? प्रश्नकर्ता थे महाराज धृतराष्ट्र और उन्होंने कहा था –

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय॥

महाराज धृतराष्ट्र के इस प्रश्न का उत्तर संजय ने श्रीमद् भगवद्गीता के आखिरी श्लोक में दिया। संजय कहता है –

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

जहाँ पर योगेश्वर कृष्ण हैं और जहाँ पर धनुर्धारी अर्जुन हैं, वहाँ पर श्री, विभूति और विजय निश्चित है। संजय के इस उत्तर से ही भारतीय आध्यात्मिक जीवन की नींव पड़ी। भारत का अध्यात्म तो हमेशा से जीवन्त रहा है। हमेशा से अनेक ऋषि, मुनि और मनीषी समाज के उत्थान के लिए, मानवता के

कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। उनका यही प्रयास रहा कि अध्यात्म भारतीय परम्परा का एक अटूट और अभिन्न अंग बने, किन्तु आधुनिक सन्दर्भ में संजय के उत्तर ने भारतीय जीवन में अध्यात्म की नींव डाली, जिसमें यह स्पष्ट है कि व्यक्ति को दो रूपों में अपने आपको ढालना है। एक रूप है योगी का और दूसरा रूप है क्षत्रिय का।

योगी का अर्थ होता है एक अन्तर्जागृत मनुष्य, जिसकी बुद्धि और चित्त स्थिर तथा मन शान्त होता है, जो विवेक और अविवेकपूर्ण कार्यों में अन्तर समझ सकता है तथा सत्य-असत्य के भेद को जानकर सत्य का अनुसरण करता है। ये योगी के लक्षण होते हैं, जिसने अपने ऊपर विजय प्राप्त की हो। दूसरा रूप है क्षत्रिय का। क्षत्रिय का यह मतलब नहीं कि हमेशा शस्त्र उठाकर लड़ाई करता रहे, बल्कि क्षत्रिय वह है, जो जीवन में हमेशा प्रगति और उन्नति की इच्छा करता हो, उसके लिए संघर्षरत और प्रयत्नशील हो तथा जिसका लक्ष्य किसी एक विचार, आदर्श, परिस्थिति, परिवेश और धर्म की स्थापना हो। क्षत्रिय का तात्पर्य यहाँ पर कर्मठता से है।

संसार में अधिकतर लोग तामसिक हैं, उससे कम लोग राजसिक हैं और सात्त्विक तो नहीं के बराबर हैं। अगर तामसिक 70% हैं, तो राजसिक 25% और सात्त्विक 5% होंगे – यह आँकड़ा हमारे समाज का हो सकता है। जो लोग तामसिक हैं, वे अपने जीवन में परिवर्तन नहीं चाहते हैं। इच्छा भले ही रखें, सुख की इच्छा रख सकते हैं, उपलब्धि की इच्छा रख सकते हैं, कामना तो हर एक के मन में होती है, किन्तु जब कुछ करने और कुछ बदलने का अवसर आता है, तब उस समय उनका यही सिद्धान्त रहता है – जीयो और मुझे जीने दो। हमें न तो किसी दूसरे की परिस्थिति या परिवेश में हस्तक्षेप करना है और न अपनी परिस्थिति में। हम जैसे हैं, वैसे प्रसन्न हैं। तामसिकता के लक्षण अकर्मण्यता में दिखलाई देते हैं, जब मनुष्य कुछ चाहते हुए भी अकर्मण्य जीवन बिताता है।

राजसिक व्यक्ति सक्रिय जीवन बिताता है, किन्तु उसके कर्म की दिशा स्वार्थ पूर्ति की ओर रहती है। अगर हमारे पास निन्यानवे हैं, तो उसे सौ कैसे बनाया जाए। अगर हमारे पास थोड़ी शक्ति है, तो हम कैसे बताएँ समाज को कि हममें भी कुछ खूबी है। इस प्रकार जो राजसिक कर्म होता है, वह स्वार्थ प्रेरित कर्म रहता है, स्वार्थ पूर्ति के लिए रहता है।

सात्त्विक व्यक्ति का जीवन कर्मप्रधान जीवन है। सात्त्विकता में कर्मों से पलायन नहीं सिखाया जाता है, बल्कि कर्मों में अधिक गहराई से संलग्न

होना पड़ता है और इसीलिए सात्त्विक जीवन कर्म प्रधान जीवन माना गया है। और इस कर्म का लक्ष्य बहुतों का हित रहता है – *बहुजनहिताय, बहुजनसुखाय; लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु* – उसके कर्मों के पीछे यही भाव रहता है। आध्यात्मिक प्रक्रिया एक सात्त्विक व्यक्ति के जीवन में ही अधिक पनपती है, क्योंकि अध्यात्म के जितने भी चरण हैं, उन सभी का उद्देश्य मनुष्य को स्वार्थ वृत्ति से, तामसिकता और राजसिकता से दूर करना है और उसके जीवन में शान्ति, स्थिरता और सात्त्विकता का विकास करना है। एक सात्त्विक मनुष्य ही क्षत्रिय होता है, जो अर्जुन की तरह यह कहता है कि मुझे न स्वर्ग का सुख चाहिए, न राज्य का सुख चाहिए, मैं अपने आप में संतुष्ट हूँ, किन्तु अगर आवश्यकता पड़ी तो मैं मानव उत्थान के लिए अपनी सेवा देने को तैयार हूँ। अर्जुन का यही भाव रहा, और केवल अर्जुन नहीं, अपने इतिहास में जितने समाज प्रेरक रहे हैं, उन सभी ने शान्त, सन्तुलित, संयत जीवन को महत्त्व दिया है, ज्ञान को महत्त्व दिया है, किन्तु जब भी आवश्यकता पड़ी है, समाज में परिवर्तन लाने के लिए वे समाज के युद्ध क्षेत्र में कूद पड़े हैं, और सभी ने अलग-अलग प्रकार का अस्त्र भी उठाया है। किसी ने ब्रह्मास्त्र उठाया, किसी ने अहिंसा का अस्त्र उठाया, तो किसी ने प्रेम का अस्त्र उठाया। इस प्रकार समाज में परिवर्तन लाने के लिए जिस भी विचार का सहारा लिया गया, वह विचार समाज निर्माण का एक बहुत ही सशक्त अस्त्र बना।

अध्यात्म की आधारशिलाएँ

अध्यात्म की आधारशिलाएँ क्या हैं? एक है सत्संग, जिसका प्रयोजन दृष्टिकोण एवं विचार में परिवर्तन लाना तथा विवेक बुद्धि को अपनाना है। दूसरी आधारशिला है साधना, जो अपने शरीर, मन, बुद्धि, एवं भावना को परिष्कृत करने के लिए और स्वयं को अपने साथ जोड़ने के लिए है। स्वाध्याय अध्यात्म की तीसरी आधारशिला रही है, स्वयं की क्रिया और प्रतिक्रिया को जानने के लिये, यह समझने के लिये कि अपने आपको किस प्रकार दूसरों से जोड़ा जाए तथा यह जानने के लिए कि एक संयत विचारधारा को हम किस तरह से अपने जीवन में अपना सकते हैं। अध्यात्म की चौथी आधारशिला रही है समर्पण। यह उच्च या ईश्वरीय शक्ति के प्रति आस्था की भावना है, जिसको ईश्वर प्रणिधान भी कहते हैं।

जिस प्रकार एक गाड़ी के चार पहिये होते हैं, उसी प्रकार सत्संग, साधना, स्वाध्याय और समर्पण जब मनुष्य के जीवन के अंग बन जाते हैं, तभी वह अपने जीवन में प्रगति और उत्थान का अनुभव करता है तथा जीवन के लक्ष्य को जान पाता है।

उपनिषदों के अनुसार प्रत्येक प्राणी का जन्म यज्ञ से हुआ है। पुरुष-सूक्त में इसकी चर्चा होती है। केवल पुरुष-सूक्त में ही यह संकेत दिया गया है कि एक मंगल कार्य के लिए, सृष्टि के सृजन के लिए, सृजन के पूर्व भगवान यज्ञ करते हैं। उस यज्ञ से पहले धर्म की उत्पत्ति होती है, और धर्म मनुष्य जीवन के लिए आचार-संहिता बनते हैं। जैसे पहले मकान तैयार होता है, उसके बाद ही व्यक्ति उसमें रहता है। तो धर्म मकान है। धर्म के सृजन के बाद मनुष्य की उत्पत्ति होती है। मनुष्य शब्द का अर्थ होता है – जिसका मन सोया हुआ है, और सोया हुआ क्यों है? इसलिए कि अभी इस धर्मरूपी गृह में किसी का प्रवेश नहीं हुआ है। धर्मरूपी गृह में प्रवेश करने के बाद मनुष्य जागृत होता है, और जागने के बाद उसको अपने जीवन का लक्ष्य समझ में आता है। वह लक्ष्य है देवकार्य को करना। ललिता-सहस्रनाम में मंत्र-शक्ति के बारे में बतलाते हुए कहा गया है – *चिदग्निकुण्ड-सम्भूता देवकार्य-समुद्यता*। शक्ति की उत्पत्ति चित्त के अग्नि कुण्ड से होती है और यह शक्ति देवकार्य को करने के लिए तत्पर रहती है।

चित्त का अग्नि कुण्ड कब जलेगा? जब हम अपने मन को तैयार करके अहंकार रूपी समिधा को जलायेंगे। और जब अहंकार रूपी समिधा चित्त की अग्नि में जलती है, तब एक नये स्वरूप की उत्पत्ति होती है। यह नया स्वरूप ही मनुष्य को बोध दिलाता है कि इस संसार में वह देवकार्य करने आया है, केवल मौज-मस्ती के लिए नहीं। यही हमारी सनातन अध्यात्म परम्परा की शिक्षा रही है।

बच्चों का यौगिक विकास

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

भारतीय वैदिक परम्परा में बच्चों को सात साल की अवस्था से ही योग से परिचित कराया जाता है। इस अवस्था तक बच्चा अपने प्रथम गुरु, माँ के पास रहता है। बच्चे के भावनात्मक विकास में यह अवस्था बहुत महत्त्वपूर्ण होती है।

तत्पश्चात् बच्चों को सूर्य नमस्कार, नाड़ी-शोधन और गायत्री मंत्र – इन तीन यौगिक अभ्यासों से परिचित कराया जाता है। सात साल की अवस्था में बच्चों में कुछ महत्त्वपूर्ण शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक घटनाएँ घटने के कारण ये तीन अभ्यास उस समय अहम भूमिका निभाते हैं। उस समय पीनियल ग्रन्थि का क्षय होना आरम्भ हो जाता है। पीनियल ग्रन्थि के विघटन की प्रक्रिया अस्सी-नब्बे साल की अवस्था तक जारी रहती है। ये तीन अभ्यास उस क्षय की गति को थामते हुए बच्चों के शारीरिक तथा मानसिक विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये उनकी मानसिक स्पष्टता, एकाग्रता, आत्म-विश्वास और सही निर्णय लेने की क्षमता के विकास हेतु बहुत उपयोगी सिद्ध होते हैं।

आजकल बहुत-सी माताएँ अपने बच्चों की उद्विग्नता और विक्षिप्तता के बारे में शिकायत करती हैं। बच्चों में एकाग्रता का अभाव और अध्ययन के प्रति अरुचि इसलिए है कि वे उन विधियों का अभ्यास नहीं करते जो उनकी सहायता कर सकती हैं। योग मात्र एक आध्यात्मिक साधना या बच्चों को भगवान के समीप लाने वाली प्रणाली नहीं है। यह उनके जीवन को सफल और सुसंस्कृत बनाने की कारगर विधि है।

गायत्री मंत्र किसी देवी या देवता का नाम नहीं, बल्कि एक ध्वनि-तरंग है जो शरीर और मस्तिष्क पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। संगीत सुनते ही आप तुरन्त रूपान्तरित हो जाते हैं। यदि वह संगीत आपको पसंद है तो उसमें तन्मय होकर आप आपने वातावरण की सुध-बुध भी खो सकते हैं, पर यदि वह संगीत आपको नापसंद होने के साथ-साथ जोर से बज रहा हो, तो उससे आपको सिरदर्द भी हो सकता है। ध्वनि इतनी शक्तिशाली चीज है कि काँच को चकनाचूर करने से लेकर भूस्खलन तक करा सकती है।

गायत्री मंत्र का पाठ सृजनशीलता, अन्तर्प्रज्ञा और मानसिक स्पष्टता की वृद्धि हेतु किया जाता है। सूर्य नमस्कार और नाड़ी-शोधन प्राणायाम शारीरिक

एवं प्राणिक स्तर पर सामंजस्य और संतुलन प्रदान करते हैं। अगर ये तीन अभ्यास बच्चों को सात साल की अवस्था में सिखाये जाएँ, तो उनकी बहुत मदद कर सकते हैं।

दुर्भाग्यवश आजकल लोगों के पास अपने बच्चों को ऐसे अहम अभ्यास सिखलाने के लिए न तो समय है, न ही रुझान। पूछने पर वे सौ बहाने बतला सकते हैं। लेकिन इतना याद रखिये कि आप अपने बच्चे को किसी महत्त्वपूर्ण चीज से वंचित रख रहे हैं। अभिभावकों को इस ओर ध्यान देना होगा। बच्चों के विकास के लिए इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए।

माता-पिता का कर्तव्य

माता-पिता को बच्चों का पालन-पोषण करने के साथ-साथ समाज में उनकी सहभागिता के लिए भी प्रयास करना होता है। बाकी चीजों की जिम्मेदारी खुद बच्चों पर है, क्योंकि आपने उन्हें केवल जन्म और शरीर दिया है, आत्मा नहीं। आत्मा तो कहीं और से स्वयं को अभिव्यक्त करने आई है। आप कितना भी प्रयास कीजिये, लेकिन इस अभिव्यक्ति को रोक नहीं पायेंगे। अगर आप अपने बच्चे में एक विशेष गुण देखना चाहते हैं तो इसका ख्याल आपको गर्भाधान के समय से ही रखना होगा। अगर आप अपने बच्चे को नटखट और शरारती की बजाय शांत और चुप देखना चाहते हैं तो इसके लिए आपको पहले से ही सोचना चाहिए था। वैसे बच्चों को नटखट ही होना चाहिए। जो बच्चे नटखट नहीं होते, वे मूर्ख होते हैं। बुद्धिमान् बच्चे ही शरारतें किया करते हैं। बच्चे अपने माता-पिता के धैर्य और आत्म-संयम की परीक्षा लेने और प्रशिक्षण देने के लिए ही आये हैं। माता-पिता का कर्तव्य निभाना अपने में एक बहुत बड़ी साधना है।

आपको सदा बच्चों को ढेर सारा प्रेम और स्नेह देना चाहिए। बच्चे चतुर होते हैं, उन्हें मालूम रहता है कि अपने माता-पिता को कैसे सम्भालना है, क्योंकि वे चुपचाप आपको हर समय देखते रहते हैं। उन्हें पता है कि कौन-सी चीज आपको खुश करती है और कौन-सी नाखुश। वे यह भी जानते हैं कि कब आप सच्चाई और ईमानदारी से पेश आ रहे हैं और कब अभिनय कर रहे हैं। आप बच्चों के साथ प्रेम का अभिनय नहीं कर सकते, उन्हें तुरन्त मालूम पड़ जाता है। यदि माता-पिता को कोई पटरी पर ला सकता है, तो केवल उनके बच्चे।

माता-पिता हमेशा अपने को ठीक और बच्चों को गलत समझते हैं। लेकिन याद कीजिये, आप लोग भी एक समय बच्चे थे और अपने माता-पिता को तंग किया करते थे। इसलिए जब भी बच्चे अपनी सीमाओं का उल्लंघन करते हैं, तब शांत बैठकर जरा सोचिए कि आप खुद बचपन में क्या किया करते थे। ऐसा सोचने पर आप निस्सन्देह उन्हें क्षमा कर देंगे।

बच्चों में ऊर्जा बहुत रहती है, जिसका खर्च वे शरारतों में किया करते हैं। लेकिन यदि वे इस ऊर्जा को नियंत्रित और समन्वित कर मस्तिष्क के उच्च केन्द्रों की ओर दिशान्तरित कर सकें, तो निश्चित रूप से सृजनशील और प्रतिभावान् बन सकते हैं। बड़े होकर वे कुशल शिक्षक, व्यापारी, इन्जिनियर और अच्छे अभिभावक बन सकते हैं। अच्छा मनुष्य बनना ही महत्त्वपूर्ण चीज है, उसमें भी एक अच्छी माता या पिता बनना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है।

बच्चे को उचित दिशा-निर्देशन, लक्ष्य, प्रशिक्षण और अनुशासन देना माता-पिता का प्राथमिक कर्तव्य है। बच्चे माता-पिता की ममता-आसक्ति के पात्र या उनके अधूरे सपनों को पूरा करने वाली कठपुतलियाँ मात्र नहीं हैं। आपको एक शिल्पकार की तरह उनके व्यक्तित्व को तराशना होगा और यह योग के अभ्यासों से ही सम्भव है।

नियति

आत्मा एक सार्वभौमिक तत्त्व है जो लिंग, धर्म, जाति और राष्ट्रीयता की सीमाओं से परे है। इसी अलौकिक तत्त्व के साथ आप इस संसार में आये हैं,

और इससे परिचित होना आपके लिए जरूरी है, क्योंकि यही आपका स्रोत और बीज है। जन्म के समय बच्चे स्वाभाविक रूप से आध्यात्मिक और भगवान के समीप होते हैं। उनमें दिव्यता सहज रूप से परिलक्षित होती है। लेकिन बड़े होने पर हम संसार से सम्बन्ध जोड़ते हैं और यह सांसारिक व्यापार हमें अपनी अन्तरात्मा से दूर ले जाता है। अपने वातावरण और प्रशिक्षण के अनुसार हम लोग चालाक, धूर्त्त और टेढ़े होते जाते हैं और आत्म-तत्त्व से अधिक दूर होते जाते हैं।

यह जरूरी है कि माता-पिता अपने बच्चों को आध्यात्मिक वातावरण दें ताकि संसार में रहते हुए और जीवन की माँगों को पूरा करते हुए भी वे आध्यात्मिक सजगता का विकास कर सकें। बच्चों के लिए योग एक अच्छा अवसर है। बचपन से ही उन्हें मंत्र, आसन और प्राणायाम से परिचित कराना चाहिए। इससे उन्हें जीवन में एक मजबूत आधार मिलेगा। स्वस्थ शरीर, सकारात्मक मन और अच्छे चरित्र से युक्त होकर वे किसी भी कठिनाई का सामना करने में सक्षम होंगे। आपको अपने बच्चों को बाल्यावस्था से ही प्रशिक्षित करना होगा, क्योंकि उस समय वे एक साफ कैन्वास की तरह होते हैं, जिस पर आप किसी भी चित्र को उतार सकते हैं।

कुछ बच्चे ऐसे प्रशिक्षण को नापसंद और इसका विरोध भी कर सकते हैं। फिर भी आपका यह कर्तव्य है कि आप उनके सामने विभिन्न प्रकार के अवसर प्रस्तुत करें और उन्हें अपनी नियति का चुनाव खुद करने दें। इस चुनाव में आपकी कोई भूमिका नहीं है। बच्चों को मंदिर या गिरजाघर जाने, भगवान से प्रार्थना करने अथवा योगाभ्यास करने के लिए मजबूर नहीं करना। उन्हें सिर्फ अवसर प्रदान करना और वे अपनी नियति के मुताबिक सही निर्णय स्वयं लेंगे। आखिर वे अपनी नियति साथ लेकर आए हैं। उनके अपने कर्म हैं, संस्कार हैं और उन्हीं के मुताबिक उनकी इच्छाएँ और कर्म होंगे। आप इसे बदल नहीं सकते।

बच्चे को खुद सोचने की स्वतंत्रता देनी चाहिए। उन्हें सक्षम, सबल और स्वावलम्बी बनाकर, सब प्रकार के अवसर प्रदान करने चाहिए। अगर वे डिस्को या नाइटक्लब में जाना चाहते हैं तो जाने दो। मुझे मनुष्य की क्षमता और शक्ति पर पूरा विश्वास है। निश्चित रूप से व्यक्ति कभी-न-कभी जीवन की यथार्थता के प्रति सजग हो उठेगा। इसलिए बच्चों को उनकी नियति पर छोड़ दो।

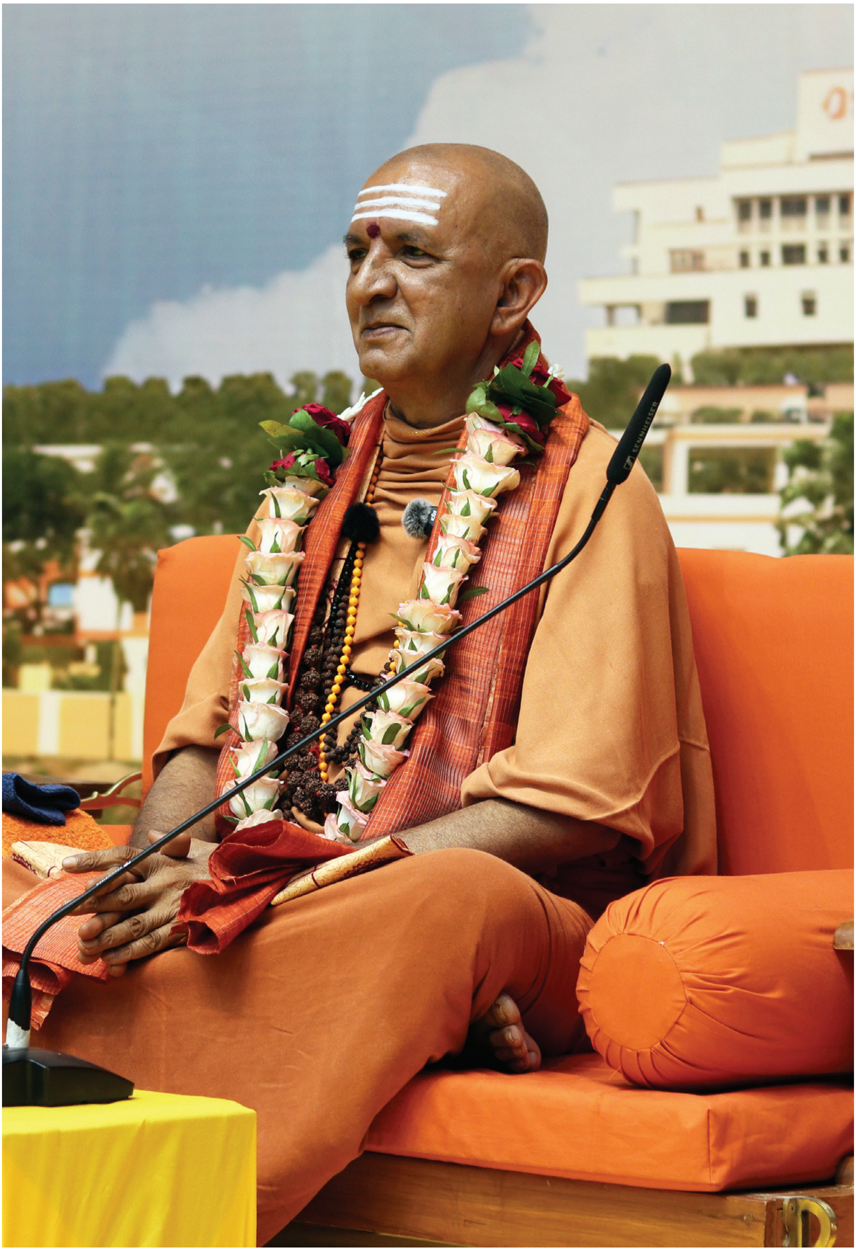

सरस्वती
विश्व योगपीठ, मुंगेर
2026

भारत योग यात्रा, पटना – 2026
अध्यात्म में प्रवेश

पुराणों में पथ-प्रदर्शन

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

पुराणों में अनेकानेक आध्यात्मिक रहस्य छिपे हुए हैं। आजकल लोग पुराणों के रहस्य को न समझ कर उन्हें व्यर्थ मानने लगे हैं, लेकिन निम्नांकित उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि उनमें महान् आध्यात्मिक तथ्य छिपे हुए हैं, जिनसे मनुष्य परम लाभ प्राप्त कर सकता है। दस अवतारों का ही उदाहरण लीजिए। उनमें साधक की आध्यात्मिक उन्नति का सारांश निहित है।

मत्स्यावतार से साधना का उद्घाटन होता है। मत्स्य रूप में भगवान सागर के तल से वेदों को ऊपर लाते हैं। वेद मानव जीवन के लक्ष्य का सम्यक् ज्ञान कराते हैं। यह ज्ञान अज्ञान-सागर में छिपा हुआ है। इसका उद्धार करना चाहिए। साधक के जीवन में यह प्रथम कदम है। यह ज्ञान धरातल पर आता है। यह मनुष्य का प्रथम जागरण है। मत्स्यावतार इसी का प्रतीक है। जीवन-लक्ष्य की चेतना अविद्या की गहराइयों से ऊपर आती है।

परन्तु अन्धकार की शक्तियाँ साधक को आगे बढ़ने नहीं देतीं। तब भले तथा बुरे में आंतरिक संग्राम छिड़ जाता है। यही देवासुर संग्राम है, जिसके लिये कूर्मावतार होता है। इस अवस्था में मंथन की क्रिया साधक के लिए आवश्यक है। मंथन के द्वारा अमृत की प्राप्ति होती है, परन्तु साथ ही कालकूट का सामना करना होता है।

मानव-प्रकृति की कुछ निम्न-वस्तुएँ ऊपरी तल पर न आकर नीचे अंतस्तल में चली जाती हैं। निम्न-प्रकृति के तत्त्व मनुष्य के चित्त में गहरे गड़ जाते हैं। साधक को उन्हें नष्ट करना होगा। उसे अन्दर घुस कर उनका हनन करना होगा। पुराणों में उसे हिरण्याक्ष बतलाया गया है। वाराह भगवान ने पृथ्वी के भीतर प्रवेश कर हिरण्याक्ष को मारा था। ठीक उसी तरह आत्मविश्लेषण के द्वारा चित्त की गहराई में प्रवेश कर मनुष्य को काम, क्रोधादि वासनाओं को विनष्ट करना होगा।

इसके पश्चात् महान् आंतरिक संग्राम छिड़ जाता है। इस दैवी शक्ति के विरुद्ध मनुष्य की आसुरी प्रकृति विप्लव कर बैठती है। यह आसुरी प्रकृति हिरण्यकशिपु है। ईश्वरीय प्रकृति शिशु प्रह्लाद है। इस अवस्था में साधक आध्यात्मिक मार्ग में अभी शिशु ही है। अभी गम्भीर ज्ञान का अवतरण नहीं

हुआ है। यह श्रद्धा, प्रेम तथा सतत् प्रार्थना की ही अवस्था है। आसुरी अत्याचार के विरुद्ध भगवान का अवतरण होता है। भगवान द्विविध रूप में प्रकट होते हैं। यह रूप पूर्णतः ईश्वरीय नहीं है। उसके साथ-साथ भौतिक रूप सिंह का भी है। नृसिंह भगवान गुरु-ईश्वर के प्रतीक हैं। सारे पशुओं में, चूँकि सारे जीव पशु ही हैं, गुरु सिंह रूप है। गुरु ईश्वरीय भी है। यह नृसिंहावतार गुरु साधक का संरक्षण करता है। तब साधक आसुरी शक्तियों पर विजय पा लेता है।

पाप पराजित हो जाता है। साधक में धर्म का विकास होता है। इसके पश्चात् वामनावतार के लिये पथ प्रशस्त हो जाता है। साधक शक्ति तथा सद्गुण सम्पन्न बन जाता है। वह सम्राट् बलि के समान है। अभिमान घुस जाता है। शक्ति तथा सद्गुण के कारण साधक को आशातीत यश तथा ख्याति की प्राप्ति होती है। तब साधक के अभिमान को दूर करने के लिये भगवान वामनावतार ग्रहण करते हैं। यह वामनावतार नम्रता है, क्योंकि नम्रता ही आध्यात्मिक अभिमान का सामना कर सकती है। साधक के अहंकार का एक भाग इस शुभ कर्म में बाधा देना चाहता है, परन्तु नम्रता की ही विजय होती है। शुक्राचार्य की चालें नहीं चल पातीं, बलि पराजित होता है।

अब आध्यात्मिक जीवन एक निश्चित करवट बदलता है। प्रधान बाधाएँ अब बीत चलीं। अब साधक को प्रकृति से ही छुटकारा प्राप्त करना है। यही है परशुराम के द्वारा माता की हत्या। वह पुरुष के प्रतीक, जमदग्नि के प्रति पूर्ण आत्मार्पण कर देता है, जिससे ईश्वर की पूर्ण कृपा प्रवाहित हो सके। तदनन्तर परशुराम क्षत्रियों का संहार करते हैं। क्षत्रिय राजसी शक्ति के द्योतक हैं। यहाँ राजसी शक्ति से सारे कर्मों का आशय है। प्रकृति-चैतन्य से ऊपर उठकर योगी अपने सभी आगामी तथा संचित कर्मों को विनष्ट कर डालता है। प्रारब्ध कर्म अभी बचा रहता है, जो दशरथ तथा जनक के परिवार के रूप में प्रकट होता है। दशरथ दस इन्द्रियों का प्रतीक है, जो तीन स्त्रियों अर्थात् तीन गुणों से युक्त है तथा उसके चार पुत्र यानी अंतःकरण चतुष्टय है। जनक पूर्णतः अनासक्त होकर राजकार्य करते हैं। यह ज्ञानी के लोकसंग्रह का प्रतीक है।

तदुपरांत सुख तथा विजय का ही साम्राज्य है। सारी ईश्वरीय शक्तियाँ ज्ञानी के पास चली आती हैं। सम्पूर्ण देव सेना, रामावतार की कपि सेना उसके हाथ में है। एक सीढ़ी अभी बाकी है, वह है सविकल्प का अतिक्रमण कर उस धाम को प्राप्त करना जहाँ राम है। रामावतार इसका अतिक्रमण करता है, पुल निर्माण के अनंतर राम-राज्य की स्थापना होती है।

रामावतार के पश्चात् अगला अवतार है कृष्ण। यह जीवन्मुक्त अवस्था का परिचायक है। जीवन्मुक्त के लिये सब कुछ लीला ही है। उसके लिये सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। सब दैवी लीला ही है। वह सहज समाधि की चेतना में स्थित रहता है।

बुद्धावतार – यह महान् जीवन की पराकाष्ठा है। यह चरम संध्या है। बुद्ध अपनी सभी किरणों को समेट बोधि वृक्ष के नीचे निर्वाण में प्रवेश करते हैं। ज्ञानी परमातीत ज्ञान-वृक्ष के नीचे निर्वाण में प्रवेश करता है तथा असीम के साथ एक होकर अपने मूलधाम को लौट जाता है।

हाँ, अब कल्कि अवतार की बारी आती है। इसका क्या अर्थ है? इसका भी रहस्य है। जिस तरह सूर्य काले बादलों से मुक्त होकर अपनी पूर्ण विभा में चमक उठता है, उसी तरह ज्ञानी का पूर्ण जीवन भी विभासित हो उठता है। यह ईश्वरीय शक्ति है, जो अधर्म को नष्ट करती है। कल्कि अवतार सभी अधर्मों को विनष्ट कर ईश्वर के राज्य को संस्थापित करता है।

इस प्रकार हम दस अवतार के रूप में जीवन के विकास को देखते हैं। मत्स्यावतार से जीवन का प्रथम प्रस्फुटन होता है तथा कल्कि अवतार से उसका विश्वात्म विकास। यह दृष्टान्त के रूप में दिया गया है, जिससे आप सभी पुराणों तथा शास्त्रों के गम्भीर उपदेशों को समझ सकें।

चेतना की अवस्थाएँ

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

तंत्र और योग का उद्देश्य व्यक्तिगत चेतना का विस्तार करना और अंतर्निहित प्रसुप्त ऊर्जा को जागृत करना है। इस तांत्रिक प्रक्रिया की अन्तिम अवस्था में व्यक्तिगत चेतना एवं ऊर्जा, ब्रह्माण्डीय चेतना एवं ऊर्जा के साथ एकाकार हो जाती है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए साधक को मन एवं चेतना की सम्पूर्ण सजगता, समझ और अनुभूति विकसित करनी चाहिए।

चेतना का स्वरूप

अनुभव के दो क्षेत्र होते हैं, परा और अपरा। परा सूक्ष्म अनुभव से सम्बन्धित होता है, जबकि अपरा स्थूल अनुभवों का क्षेत्र होता है। परा अवस्था में चेतना देश, काल तथा वस्तु के प्रभावों के अधीन नहीं होती, बल्कि वह इन सब से परे पूर्णतया शांत तथा आकाश की तरह सर्वव्यापी होती है। शांति की इस अवस्था में चेतना के तीन गुण – सत्, चित् और आनन्द प्रदीप्त रहते हैं। परा अवस्था में चेतना सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान होती है।

अपरा अवस्था में चेतना जब शक्ति के साथ व्यवहार करती है तो स्थूल अनुभवों का जन्म होता है। इस स्तर पर चैतन्यता की स्थिति रहती है। चैतन्यता का अर्थ है अपने अस्तित्व के प्रति, अपने जीवन के प्रति सजग होना। व्यक्ति के द्वारा अंतर्निहित चेतना को एक स्वतंत्र घटक के रूप में अनुभव नहीं किया जाता, बल्कि इसे अपने जीवन से सम्बन्धित चेतना के रूप में अनुभव किया जाता है। अर्थात् इस स्थिति में जब कभी चेतना का अनुभव किया जाता है, वह 'मैं जी रहा हूँ, मैं जीवित हूँ' के अनुभव के रूप में अपने जीवन से सम्बन्धित होता है। इस अनुभव को चैतन्यता कहा जाता है और इस स्थिति से व्यक्ति सूक्ष्म या स्थूल, दोनों आयामों तक पहुँच सकता है। जब शक्ति के साथ यह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और चैतन्यता जागृत रहती है, तब व्यक्ति अपने आपको परा सत्ता के बजाय अपरा, व्यक्त सत्ता के रूप में अनुभव करता है। इस अवस्था में चेतना संसार के प्रति विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियाएँ करती है।

संसार में चेतना अपनी प्रतिक्रिया नाम, रूप तथा विचार को पहचानकर अभिव्यक्त करती है। जैसे 'गुरु' शब्द का अपने आप में कोई अर्थ नहीं

होता, लेकिन गुरु शब्द सुनकर कोई व्यक्ति हिमालय में ध्यान लगाए किसी लंगोटीधारी साधु की कल्पना कर सकता है, क्योंकि उसकी चेतना में गुरु की वही छवि बसी है। लेकिन यदि एक व्यक्ति विशेष का नाम लिया जाए, जैसे स्वामी शिवानन्द जी, तो यह नाम एक विशेष व्यक्ति को एक विशेष रूप से जोड़ता है। मन में नाम के साथ-साथ उस नाम से सम्बन्धित रूप भी उजागर होता है। नाम और रूप के साथ-साथ स्वामी शिवानन्द जी में निहित गुणों की पहचान भी होती है – 'वे एक अच्छे इन्सान हैं। वे धर्मनिष्ठ, शुद्ध, पवित्र और समदृष्टि महात्मा हैं। वे भगवान स्वरूप हैं।' ऐसे विचार आने लगते हैं। इस प्रकार नाम, रूप और विचार वे तीन चीजें हैं जिनके माध्यम से चेतना इस संसार में व्यवहार करती है।

चेतना की चार अवस्थाएँ

इस भौतिक आयाम में अभिव्यक्त चेतना की चार अवस्थाएँ होती हैं जिनका साधक के द्वारा अनुभव और उपयोग किया जा सकता है। तंत्र के अनुसार ये चार जाग्रत अवस्था, स्वप्न अवस्था, सुषुप्ति अवस्था तथा तुरीयावस्था के नाम से जानी जाती हैं। आधुनिक मनोविज्ञान मन को चेतना की तीन श्रेणियों के अंतर्गत वर्गीकृत करता है – चेतन मन, अवचेतन मन तथा अचेतन मन।

ये क्रमशः जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति की अवस्थाओं को दर्शाते हैं। वेदान्त परम्परा के मुख्य उपनिषदों में से एक, माण्डूक्य उपनिषद् का विषय चेतना और उसकी विभिन्न अवस्थाएँ हैं, जिन्हें वैश्वानर, तैजस, प्रज्ञा तथा तुरीय नाम से सम्बोधित किया गया है।

चेतन, अवचेतन तथा अचेतन शब्दों के प्रयोग द्वारा सजगता के उस स्तर की व्याख्या की जाती है जिसे मन किसी निश्चित समय पर धारण करता है। ये मन की व्याख्या नहीं करते, बल्कि जाग्रत अवस्था, स्वप्न अवस्था और सुषुप्ति अवस्था में चेतना की सीमा बतलाते हैं। दैनिक जीवन में पहली तीन अवस्थाओं का अनुभव नियमित होते रहता है। चौथी अर्थात् तुरीय अवस्था को कभी-कभी एक झलक के रूप में अनुभव किया जाता है, जैसे ध्यान के दौरान कभी अचानक सजगता सभी दिशाओं में फैल जाती है और हर चीज के प्रति सजगता रहती है, फिर भी व्यक्ति अनासक्त बने रहता है।

जाग्रत अवस्था

चेतना की पहली अवस्था है जाग्रत अवस्था, जिसे चेतन मन के रूप में समझ सकते हैं। यह अंतरात्मा तथा संसार के बीच व्यवहार की सजगता दर्शाती है। दूसरे शब्दों में, यह चेतना की ऐसी अवस्था है जो व्यक्त आयाम से सम्बन्धित रहती है।

माण्डूक्य उपनिषद् में चेतन मन का उल्लेख वैश्वानर के रूप में किया गया है। वैश्वानर दो शब्दों, विश्व और नर से मिलकर बना है। जाग्रत अवस्था में मन विश्व से पूरी तरह सम्बन्धित रहता है। नर का तात्पर्य पुरुष या व्यक्ति के साथ-साथ क्षय से भी है। इस प्रकार वैश्वानर का तात्पर्य उस चेतना से है, जो पूर्ण रूप से प्रकृति से सम्बन्धित है और जो प्रकृति के साथ अपने व्यवहार के क्रम में परिवर्तन, रूपान्तरण और विकास की प्रक्रिया से गुजरती है।

उपनिषद् के अनुसार वैश्वानर के उन्नीस मुख होते हैं, जो इन्द्रियों और मन की ऐसी क्षमताओं को दर्शाते हैं, जिनसे व्यक्ति संसार से सम्बन्धित जानकारियों को प्राप्त करता है, उन्हें उचित क्रम में संगठित करता है और फिर प्रतिक्रिया करता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ वैश्वानर के दस मुखों का निर्माण करती हैं, जिनसे सांसारिक सुखों का आनन्द लिया जाता है। अन्तःकरण के मनस्, बुद्धि, चित्त और अहंकार रूपी चार अंग होते हैं और इसके अलावा पंचतत्त्व भी होते हैं। ये सभी मिलकर उन्नीस हो जाते हैं।

इस प्रकार चेतन अवस्था में वैश्वानर इन उन्नीस क्षमताओं का उपयोग अपने परिवेश तथा संसार से सूचनाओं को प्राप्त करने, उनका विश्लेषण करने और फिर प्रतिक्रिया करने के लिए करता है। वैश्वानर बाह्य घटनाओं तथा इन्द्रिय विषयों की सजगता की ओर ले जाता है।

जाग्रत अवस्था जीवन के आधे से अधिक भाग का एक मुख्य अनुभव होती है। चौबीस घंटों में से लगभग बारह घंटे जाग्रत अवस्था में बिताये जाते हैं। इस पूरे समय चेतना बिखरी हुई रहती है। यह शायद ही कभी केन्द्रित और एकाग्र होती है, बल्कि हमेशा इच्छाओं, वासनाओं तथा आसक्तियों से युक्त रहती है तथा इसे पूरा करने के लिए अपनी ऊर्जा का इस्तेमाल करती है।

जाग्रत अवस्था में सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं, सभी मानसिक क्षमताएँ अपने चरम पर होती हैं और चेतना वातावरण, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों से जुड़ी रहती है। जाग्रत अवस्था में सजगता शत-प्रतिशत सक्रिय रहने में सक्षम होती है। यह अलग बात है कि व्यक्ति की सजगता का वास्तविक स्तर क्या रहता है। सम्भावना और वास्तविकता में प्रायः काफी अन्तर होता है। यदि कोई बड़े-से हॉल में टॉर्च जलाता है, तो हॉल का केवल एक क्षेत्र प्रकाशित होगा। इसी प्रकार जिन व्यक्तियों का अपनी मानसिक क्षमताओं पर नियंत्रण नहीं होता, वे अपने जीवन में चेतना के सम्पूर्ण दायरे का अनुभव नहीं कर पाते। वे केवल उन्हीं क्षेत्रों के प्रति सजग होते हैं जहाँ तक इन्द्रियगत चेतना पहुँचती है।

इन्द्रिय-चेतना सजगता को निर्देशित करने का एक मुख्य कारक है। जब कोई सुन्दर, आकर्षक वस्तु दिखती है तो यह इन्द्रिय-चेतना है। जब स्वादिष्ट भोजन का रस लिया जाता है तो यह इन्द्रिय-चेतना है। किसी वस्तु को छूने से जो अनुभव होता है वह इन्द्रिय-चेतना के कारण होता है। प्रतिदिन के क्रिया-कलापों में व्यक्ति किसी एक इन्द्रिय की चेतना का ही अनुभव कर रहा होता है। जाग्रत अवस्था में प्रायः आंशिक सजगता का ही इस्तेमाल किया जाता है। सम्पूर्ण सजगता की क्षमता जाग्रत अवस्था में मौजूद तो रहती है, लेकिन केवल योगी और ऐसे लोग जिन्होंने अपनी चेतना पर नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, इसका अनुभव और उपयोग कर पाते हैं। उनका मन किसी एक अनुभव, संवेदना या ज्ञान तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वे अपने इर्द-गिर्द घटित हो रही प्रत्येक घटना का एक द्रष्टा के रूप में अवलोकन करने में सक्षम होते हैं।

स्वप्न अवस्था

स्वप्न की अवस्था में व्यक्ति ऐसी सूक्ष्म प्रक्रियाओं, अनुभवों, दृश्यों तथा विचारों के प्रति भी सजग रहता है, जो भौतिक आयाम से सम्बन्धित नहीं होते। यह सूक्ष्म शरीर का अनुभव है। व्यक्ति सो नहीं रहा होता बल्कि जगा होता है, और साथ ही जगा नहीं होता बल्कि सो रहा होता है। यहाँ न तो नींद गहरी होती और न ही सम्पूर्ण सजगता होती है। बीच की इस ऊँघने जैसी स्थिति को ही अवचेतन या स्वप्न अवस्था कहते हैं। यहाँ न सजगता का पूर्णतया लोप होता है, और न ही इन्द्रिय विषयों के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। फिर भी अपने अस्तित्व के बारे में एक सजगता बनी रहती है जो मन को सक्रिय रखती है।

स्वप्न अवस्था में चेतना अपने ही प्रतिबिंबों, प्रभावों तथा रचनाओं को प्रदर्शित करती है। माण्डूक्य उपनिषद् में स्वप्न की अवस्था को तैजस नाम से सम्बोधित किया गया है। तैजस मन या चेतना का वह क्षेत्र है जहाँ सूक्ष्म, अदृश्य अनुभवों के द्वारा आनन्द की प्राप्ति होती है। मन अन्दर-ही-अन्दर एक काल्पनिक दुनिया बना लेता है, और उसी में खुश रहता है। तैजस के सात अंगों तथा उन्नीस मुखों का उल्लेख मिलता है। वैश्वानर और तैजस अर्थात् जाग्रत और स्वप्न अवस्था के बीच अन्तर मन और इन्द्रिय-विषयों के अलग-अलग सम्बन्ध के आधार पर होता है। पहली अवस्था में मन का इन्द्रिय-विषयों से सीधा सम्बन्ध होता है, जबकि दूसरी अवस्था में विषयों से प्राप्त अनुभवों के आधार पर अन्तःकरण में एक काल्पनिक दुनिया की रचना की जाती है।

स्वप्न अवस्था की एक निश्चित अवधि होती है। कुछ लोग स्वप्न बिल्कुल नहीं देखते, कुछ लोग एक घण्टे तक स्वप्न देखते हैं, और कुछ लोग छः घण्टों तक स्वप्न देखते रहते हैं। इस सीमित अवस्था में चेतना स्वयं को विभिन्न प्रतीकों, प्रभावों, विचारों, भय, आकांक्षाओं, वासनाओं, खुशी, अवसाद, चिंता इत्यादि के रूप में प्रदर्शित करती है। चेतना के द्वारा हर चीज का मानसिक पर्दे पर चित्रण किया जाता है और एक अलग दुनिया की रचना की जाती है जो भ्रम के कारण वास्तविक मालूम पड़ती है। जैसे कोई व्यक्ति डरावना सपना देखता है तो शरीर से पसीना निकलने लगता है, भय एवं चिंता का अनुभव होता है और स्वप्न वास्तविक प्रतीत होने लगता है। यह चेतना का मन के पर्दे पर एक प्रदर्शन मात्र है। जो कुछ भी चेतना द्वारा प्रदर्शित किया जाता है, व्यक्ति उसे जीना प्रारम्भ कर देता है।

स्वप्न केवल निद्रा की उस अवस्था को नहीं दर्शाता जिसमें व्यक्ति स्वप्न देखता है, बल्कि यह चेतन सजगता की उस सीमा की ओर इंगित करता है जिसे शत-प्रतिशत से घटाकर पचास प्रतिशत कर दिया गया है। सजगता आधी हो चुकी होती है, इसलिए व्यक्ति न यहाँ होता है और न वहाँ। वह न तो बाह्य घटनाओं के प्रति पूर्ण रूप से सजग एवं सावधान रहता है, और न ही आंतरिक जगत् के प्रति। वह सम्पूर्ण सजगता तथा सजगता के पूर्ण अभाव की स्थिति के बीच फँसा रहता है।

तैजस का तात्पर्य प्रकाश से है। इस अवस्था में साधक मन तथा प्राण, दोनों के प्रकाश के प्रति आंशिक रूप से सजग रहता है। जब चेतना दस इन्द्रियों से अलग हो जाती है, तब चेतना को स्थूल शरीर से संवेदनाएँ मिलना बंद हो जाता है, लेकिन फिर भी मन सक्रिय रहता है और सूचनाओं का स्रोत बन जाता है। जाग्रत अवस्था में साधक सिर्फ इन्द्रियों के प्रकाश के प्रति सजग रहता है, जबकि तैजस की मध्य अवस्था में साधक मन तथा प्राण, दोनों के प्रकाश के प्रति एक साथ सजग बने रहता है।

किसी नेत्रहीन व्यक्ति का उदाहरण लिया जा सकता है जो देख तो नहीं सकता, फिर भी उसमें आस-पास के वातावरण के सम्बन्ध में एक परिकल्पना होती है। वह चीजों को पहचान सकता है और अपने अन्तर्मन से देख भी सकता है। कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि नेत्रहीन लोगों में रंगों को पहचानने की क्षमता नहीं होती, पर ऐसा नहीं है। उन्हें रंगों की अनुभूति होती है और प्रायः वे रंगों

को पहचान लेते हैं। वे स्वप्न में केवल काला और सफेद रंग नहीं देखते, जैसा कि बहुत-से लोग सोचते हैं। यदि उनमें नेत्रों से देख पाने की क्षमता नहीं है और उन्होंने कभी भी रंगों को नहीं देखा है, तो फिर वह कौन-सी चीज है जिसने उन्हें रंगों और वस्तुओं के विषय में समझ प्रदान की है? वास्तव में वह मन का प्रकाश है जिसका माण्डूक्य उपनिषद् में तैजस के रूप में उल्लेख किया गया है।

स्वप्न अर्थात् अवचेतन अवस्था में एक ही समय दो आयामों का अनुभव किया जाता है। स्थूल जगत् एवं सूक्ष्म जगत्, दोनों के प्रति सजगता रहती है, दोनों में सामंजस्य रहता है। यह एक ध्यानात्मक अवस्था है। नाम, रूप और विचार के जगत् में चेतना की विक्षिप्त अवस्था से स्वप्नावस्था में मानसिक क्षमताएँ एकाग्र होने लगती हैं।

सुषुप्ति अवस्था

सुषुप्ति अर्थात् गहरी निद्रा की अवस्था में चेतना में शान्ति एवं स्थिरता बनी रहती है। मनोविज्ञान के अनुसार सुषुप्ति अवस्था की तुलना मन के अचेतन क्षेत्र से की जा सकती है। माण्डूक्य उपनिषद् में सुषुप्ति की अवस्था को प्रज्ञा के नाम से जानते हैं – चेतना की गहरी, विचारशून्य तथा स्वप्न रहित स्थिति। इस स्थिति में सब कुछ विलुप्त हो जाता है। यह एक ऐसा आयाम है जहाँ देश, काल एवं वस्तु बिल्कुल स्थिर हो जाते हैं, उनकी परिकल्पना भी नहीं रहती।

आधुनिक शोध के अनुसार गहरी निद्रा की यह अवस्था दो घंटे तक बनी रहती है, रात के लगभग 2 बजे से सुबह 4 बजे तक और इस दौरान पीनियल ग्रंथि से स्रावित मेलेटोनिन हॉर्मोन साधक को विश्रान्ति की गहरी अवस्था में ले जाता है जहाँ आनन्द, शान्ति और स्थिरता का अनुभव होता है।

अगर कोई व्यक्ति आधे घंटे के लिए शान्ति से बैठ जाए और इस दौरान कोई काम न करे तो उसके अन्दर एक उत्सुकता का जन्म होता है और वह घड़ी में समय देखकर सोचता है कि कितना समय बीत गया। लेकिन सुषुप्ति अवस्था में आठ घंटे बहुत तेजी से बीत जाते हैं। वहाँ वातावरण, इन्द्रियों तथा इन्द्रिय-विषयों के प्रति कोई सजगता नहीं रहती और न ही चेतना में कोई मानसिक चित्र उभरता है। एक ऐसा क्षण आता है जब व्यक्ति अपने सभी तनावों को निद्रा की अवस्था में भुला देता है और पूर्ण शान्ति का अनुभव करता है। भले ही सुषुप्ति में शान्ति की सजगता नहीं रहती, पर इसका अनुभव होता है। यदि सजगता सक्रिय बनी रहे तो शान्ति क्या है, इसकी पहचान हो

पाएगी। निद्रा की अवस्था के प्रति सजग रहना इस बात को जानने की स्थिति है कि 'सोते समय भी मैं जगा हूँ।'

अचेतन अवस्था में मन इन्द्रियों और बाह्य वस्तुओं से सम्बन्धित नहीं रहता, यह अपने आप में ही सिमट जाता है। मन की ऊर्जा का यह सिमटना ही निद्रा की अवस्था है। इसे योगनिद्रा में अनुभव किया जा सकता है। प्रायः लोग योगनिद्रा के प्रारम्भिक निर्देशों जैसे 'आराम से लेट जाइए, शरीर को शिथिल कीजिए' को सुनते ही सो जाते हैं और जब 'हरि: ॐ तत्सत्, योगनिद्रा का अभ्यास समाप्त हुआ, कृपया उठकर बैठ जाइए' जैसे अन्तिम निर्देश दिए जा रहे होते हैं, तब वे जग जाते हैं। वे प्रायः विस्मित होते हैं क्योंकि उन्हें लगता है कि वे सारा समय जगे थे, बिल्कुल सोए नहीं, फिर मन आखिरकार कहाँ चला गया? यह सुषुप्ति की अवस्था है जहाँ मन बाह्य वातावरण से अलग हो जाता है और व्यक्ति कुछ क्षणों के लिए शान्ति का अनुभव करता है। यदि किसी विक्षेप या चंचलता से सम्पर्क बना रहता तो चेतना की हलचल शान्ति का अनुभव नहीं करने देती। इसलिए योगनिद्रा के दौरान यदि सजगता पूरी तरह जाग्रत और चेतन न भी हो, तो भी यह अनुभव व्यक्ति के जीवन में शान्ति की प्राथमिक झलकों को दर्शाता है। निद्रा की स्थिति में बाह्य संसार की सजगता को भीतर के अदृश्य जगत् देखने के लिए अन्दर खींच लिया जाता है और जब सजगता का अदृश्य जगत् से सामना होता है तो कोई प्रत्यक्ष बोध नहीं होता। इसलिए योग में निद्रा को शून्यता की स्थिति कहते हैं। शून्यता और निद्रा का अनुभव ध्यान की एक अवस्था है।

निद्रा और प्रज्ञा चेतना की ऐसी अवस्था को दर्शाते है जहाँ देश, काल और वस्तु से सम्बन्धित विचार पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं, लेकिन सजगता, समझ और ज्ञान विद्यमान रहते हैं। ज्ञान के इस आयाम को प्रज्ञा के रूप में जानते हैं। इस स्थिति में केवल मन के प्रकाश का अनुभव होता है, प्राणों या इन्द्रियों का नहीं। प्रज्ञा शब्द 'ज्ञा' धातु से ही आया है और यह ऐसी अवस्था है जहाँ मन में सम्पूर्ण ज्ञान एकत्रित रहता है और मन इस ज्ञान के प्रति सजग रहता है। यही अचेतन की अवस्था है।

सुषुप्ति की अवस्था इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों से सजगता के अलगाव को दर्शाती है। इस अवस्था में इन्द्रियों को मन से अलग किया जा चुका होता है। जब व्यक्ति अंतर्मुखी होने लगता है तो मन और इन्द्रियों की चंचलता कम होने लगती है। बहिर्मुखी रहने पर मन और इन्द्रियाँ उत्तेजित होते हैं, पर

जब व्यक्ति अंतर्मुखी होता है और मन को संतुलित एवं संयमित रख पाता है तब वह मानसिक उत्तेजनाओं के प्रभावों से मुक्त हो जाता है। रात को सोते समय ऐसा ही होता है। इन्द्रियजनित अनुभवों की सजगता समाप्त हो जाती है, इसके स्थान पर मानसिक सजगता सशक्त हो जाती है।

तुरीयावस्था

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने चेतना की चौथी अवस्था अर्थात् परम चेतना के विषय में चर्चा शुरू कर दी है। पाश्चात्य देशों के लिए यह अवधारणा भले ही नई हो, लेकिन पूर्वी देशों के लिए यह चेतना का कोई नया क्षेत्र नहीं है। चौथी अर्थात् तुरीय अवस्था को चेतन, अवचेतन तथा अचेतन, इन सभी स्तरों से परे माना जाता है जहाँ सर्वज्ञता, आनन्द, शान्ति और शुद्धता का अनुभव होता है।

तुरीय अवस्था में साधक चेतना के सम्पूर्ण क्षेत्र में पूरी तरह सजग और सतर्क हो जाता है। यहाँ सतर्क होने का अर्थ है अपने व्यक्तित्व में अंतर्निहित सभी प्रतिभाओं का तीक्ष्ण होना, जिससे व्यक्ति हर आवश्यक क्रिया के लिए सजगतापूर्वक तैयार रहे। इस अवस्था में साधक सम्पूर्ण चेतना के प्रकाश का अनुभव कर पाता है, वह भूत, वर्तमान और भविष्य का द्रष्टा हो जाता है।

माण्डूक्य उपनिषद् में तुरीय अवस्था को ऐसी उच्च स्थिति के रूप में वर्णित किया गया है जहाँ मन इन्द्रियों और इन्द्रिय-विषयों के प्रभावों से बिल्कुल अलग हो जाता है। मन अपने संकल्पों और वासनाओं से प्रभावित नहीं होता। यह हर चीज से मुक्त हो जाता है और देश, काल तथा वस्तु के प्रभाव से परे एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में बने रहता है।

प्राचीन योगियों ने इस अवस्था को अचेतन से भी परे बताया है जहाँ मन अपने सारे बंधनों को तोड़ देता है। तुरीय अवस्था में साधक आंतरिक और बाह्य जगत् को एकीकृत रूप में देखता है, वह इन दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं करता। हमारी वर्तमान अवस्था में आंतरिक और बाह्य जगत् के अनुभवों में भिन्नता होती है। मन और इन्द्रियों के बीच खींचातानी की स्थिति रहती है और यही भिन्नता के रूप में प्रतीत होती है।

जब यह भिन्नता समाप्त हो जाती है तब मन बिल्कुल संतुलित हो जाता है, मानसिक उत्तेजनाएँ शान्त हो जाती हैं, मानसिक भटकाव कम हो जाता है और मानसिक शक्ति जागती है। मन इतना शक्तिशाली हो जाता है कि यह बाह्य वातावरण को भी प्रभावित कर सकता है। मन में सम्पूर्ण चेतना अवतरित

होती है और वह इन्द्रियों का द्रष्टा हो जाता है। वह स्वयं का भी द्रष्टा बन जाता है और अपने व्यवहार के साथ-साथ इन्द्रियों को भी निर्देशित करता है।

तुरीय अवस्था प्राप्त करने के बाद साधक स्वयं को नकारात्मक घटनाओं से अप्रभावित रखते हुए बाह्य जगत् के सारे क्रिया-कलापों का संचालन कुशलतापूर्वक करता है। वह भरे बाज़ार में भी शान्ति, शुद्धता तथा आनन्द की स्थिति कायम रख सकता है। स्वामी सत्यानन्द जी कहा करते थे, 'हिमालय में शान्ति नहीं और संसार में कोलाहल नहीं।' जो कुछ भी अनुभव किया जाता है वह चेतना का प्रतिबिम्ब मात्र है। यदि मन शुद्ध और शान्त है तो मुंगेर बाज़ार के बीच भी यह शान्ति बनी रहेगी। लेकिन अगर मन अशुद्ध, अशांत और उद्विग्न है तो हिमालय की किसी एकांतिक गुफा में भी अशांति तथा भटकाव की स्थिति बनी रहेगी। यदि साधक जीवन की हर परिस्थिति में मन की शांत एवं शुद्ध अवस्था को कायम रख पाता है तब इसका अर्थ है कि वह तुरीय अवस्था को प्राप्त कर चुका है।

तुरीयावस्था तभी आती है जब साधक जाग्रत, स्वप्न और निद्रा की अवस्था से गुजर चुका होता है। तुरीयावस्था मानव-मन की ज्ञात सीमाओं से परे है जहाँ देश, काल और वस्तु की कोई सीमा शेष नहीं रहती। योगियों ने हमेशा कहा है कि मन में दिव्यता और पूर्णता को अनुभव करने की क्षमता है, क्योंकि यह ऊर्जा का ही एक रूप है। योग परम्परा में चेतना का यही सिद्धान्त रहा है।

सिद्ध महात्मा तुरीय अवस्था को स्वाभाविक रूप से प्राप्त कर लेते हैं। इस अवस्था को पा लेने के बाद समय की कोई सीमा नहीं रह जाती। ऐसे सिद्ध महापुरुष व्यक्ति को एक खुली किताब की तरह देख लेते हैं। वे उसके जीवन के सभी अध्यायों अर्थात् भूत, भविष्य एवं वर्तमान को जान लेते हैं।

तुरीयावस्था प्रकृति के सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ तथा सर्वव्यापी स्वरूप को इंगित करती है। लेकिन तुरीयावस्था से भी परे शुद्ध चेतना की एक और अवस्था होती है जिसे तुरीयातीत के नाम से जानते हैं। इसका प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं होता, यह प्रकृति के परे की दिव्य स्थिति है।

इस प्रकार, प्राचीन यौगिक विचारधारा ने मन और चेतना के सिद्धान्तों का बहुत गहराई से निरूपण किया है, जो आधुनिक मनोविज्ञान की सीमाओं से भी परे है। ऋषि-मुनियों ने गहन चिंतन और व्यावहारिक अनुभव द्वारा इन विषयों की व्याख्या की है। इन्हीं विचारों और सिद्धान्तों पर आधुनिक मनोवैज्ञानिक शोध कर रहे हैं ताकि मनोविज्ञान के लिए एक ठोस आधार तैयार हो सके।

कर्मयोग और भक्तियोग का समन्वय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

सम्पूर्ण सृष्टि में बड़ा विरोधाभास है। यदि हम केवल अपने परिवार या समाज के लिए दिन-रात खटते हैं, तो कहा जाता है – 'आये थे हरि भजन को, ओटन लगे कपास'। यदि हम उदार दृष्टिकोण रखते हुए अधिकतम समय भक्ति में लगाते हैं, तो कर्तव्यच्युत और पलायनवादी कहे जाते हैं। इसलिए मैं इन दोनों की विवेचना करूँगा, जिससे आपको सामंजस्यपूर्ण दिशा-निर्देश प्राप्त हो सके।

कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग या ज्ञानयोग, सभी का लक्ष्य अपने अन्दर छिपी हुई शक्ति को जाग्रत करना है। किसी को कर्मयोग, किसी को भक्तियोग, किसी को राजयोग और किसी को ज्ञानयोग उपयुक्त प्रतीत होता है। सबके लिए सभी योग उपयुक्त नहीं होते। बहुत-से ऐसे लोग हैं, जिनको कर्मयोग के अलावा दूसरा कोई योग बिल्कुल नहीं जमता। वे लोग कर्मयोग करते हैं, तो नींद, भोजन, वासना, कामना सब भूल जाते हैं। उनको फिर भक्तियोग की जरूरत नहीं पड़ती, राजयोग या ज्ञानयोग की भी जरूरत नहीं पड़ती है। हमने कितने ही लोगों को देखा है कि जिस समय वे शास्त्र का अध्ययन करते हैं, उस समय सब कुछ भूल जाते हैं, उन्हें दुनिया का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। इसका मतलब है उनके लिए ज्ञानयोग उपयुक्त है। बहुत-से लोग आँखें बन्द करके ध्यान में बैठते हैं और भूल जाते हैं अपने आप को। वे राजयोग के लायक हैं।

इन सबमें कर्मयोग सबसे श्रेष्ठ है और सबसे सरल भी। भक्तियोग बहुत कठिन है, सरल नहीं है। यद्यपि पुस्तकों में लिखा है कि भक्तियोग बहुत सरल है, किन्तु अगर उसका विश्लेषण करें तो पता चलेगा कि भक्तियोग बहुत कठिन है। भक्ति का मतलब केवल पूजा-पाठ नहीं होता है। भक्ति का मतलब होता है किसी महान् शक्ति के प्रति गहन अनुरक्ति। जैसे तुम अपने बच्चे को प्यार करते हो या संसार की चीजों से प्रेम करते हो, तुम्हारा दिल उनमें दिन-रात लगा रहता है, ठीक वैसे ही भगवान के प्रति जो भावना होती है, उसे भक्ति कहते हैं। लेकिन तुम जो मंदिर जाते हो, अगरबत्ती जलाते हो या आरती करते हो, यह लौकिक है। यह एक विधि है। यद्यपि ऐसा नहीं कह सकते हैं कि यह महत्त्वहीन है, किन्तु तुम केवल एक-दो घण्टे पूजा-पाठ में बैठ जाओ और सोचो कि हमने तो भक्ति कर ली, यह समझना ठीक नहीं है। कर्मकाण्ड का अपना

अलग महत्त्व है। सबेरे पूजा-पाठ में बैठने से मन को शान्ति मिलती है तथा शरीर को भी आराम मिलता है, पर वास्तविक भक्ति कुछ और है।

मैं यहाँ भक्ति की व्याख्या करूँगा। जब दिल किसी महान् शक्ति के प्रति आसक्त हो और वह निरंतर प्रिय लगने लगे, तो भक्ति का प्रादुर्भाव होता है। यह प्रिय लगने का दर्शन ही भक्ति का दर्शन है। लेकिन यह प्रेम इसलिए आता है कि इसके बारे में बहुत सुना है, बहुत ब्रेनवॉशिंग हुई है। रामायण, गीता और श्रीमद्भागवत में पढ़ा है, भक्ति अब एक तरह से बुद्धि का प्रशिक्षण बन गई है, लेकिन यह वास्तविक भक्ति नहीं है। भक्ति बुद्धि की अवस्था नहीं है, भक्ति तो भावना है। वह कैसे उत्पन्न होती है? मान लो, तुम्हारे पास एक एकड़ जमीन है। यदि उसमें से एक कट्ठा जमीन किसी ने हड़प ली, तो दिन-रात यही दिमाग में घुसा रहता है। मान लो, एक धनी लड़का है और उसका एक गरीब लड़की से प्रेम हो गया या लड़की दूसरी जाति की है और शादी नहीं हो पा रही है। तब मन में हमेशा यही विचार रहते हैं। जब मन की ठीक यही अवस्था भगवान के प्रति रहती है, तब उसको कहते हैं भक्ति।

यह अवस्था सिखाई नहीं जा सकती। जैसे, तुम एक भिखारी को स्टेज पर लाकर राजा बना देते हो, तो वह राजा का अभिनय करता है, उसी प्रकार मनुष्य की बुद्धि को बचपन से रामायण-गीता सुना-सुनाकर इतना प्रशिक्षण दिया गया है कि वह भक्ति का स्वांग रचती है। हम लोग जोकर हैं और यह सब भक्ति का स्वांग है। इसमें बुरा मानने की जरूरत नहीं। यह एक तरह से आवश्यक भी है, इससे कम-से-कम मन का अनुशासन तो रहेगा। लेकिन भक्ति का जो पुरस्कार मनुष्य को मिलता है, वह है – उसकी चेतना का जागरण। जिस क्षण मनुष्य के हृदय में सच्ची भक्ति फूट पड़ती है, उस समय उसके लिए सारे संसार का मतलब बदल जाता है। दुःख-सुख का अर्थ बदल जाता है, जन्म-मरण का मतलब बदल जाता है और सब चीजें दूसरी दिखने लगती हैं। खैर, यह भक्ति तो किसी विरले को ही मिलती है।

अब रह गई पूजा-पाठ वाली भक्ति। इस कर्मकाण्ड वाली भक्ति और कर्मयोग में विरोधाभास नहीं है। कर्मयोग का मतलब होता है कि तुम दुनिया में

जो काम करते हो, उसे मन लगाकर करो, पर उस कर्म से प्राप्त होने वाले फल का मन पर जो असर होता है, उसे मत होने दो। इसी को कर्मयोग कहते हैं।

जो अज्ञान से प्रेरित होकर किया जाता है, भ्रमवश किया जाता है, इन्द्रियों द्वारा जो चेष्टा की जाती है, उसको कर्म कहते हैं। इस कर्म से फल पैदा होता है और फल के परिणामस्वरूप फिर तुमको कर्म करना होगा। कर्म करने से जो फल या परिणाम होता है, उसका अपने मन पर असर नहीं पड़े, यही कर्मयोग है। इस प्रकार आसक्ति से जो काम करते हो, वह हुआ कर्म और अनासक्ति से जो काम करते हो, वह हो गया कर्मयोग।

एक साधारण-सा उदाहरण है। आपके घर में एक नौकरानी रहती है। वह आपसे ज्यादा घर का काम करती है। जब उसके घर से तार आता है कि उसका बच्चा बीमार है, तो वह हड़बड़ा जाती है और रातों-रात चली जाती है। तब आपके घर के कामकाज से उसका कोई मतलब नहीं रहता। वह अपने घर में ही रह जाती है। इस बीच जब आपका बच्चा बीमार पड़ता है, तो यहाँ से तार जाता है कि 'बेबी बीमार है, तुम जल्दी आ जाओ।' वह आती जरूर है, मगर उसकी भावना में अंतर है, क्योंकि वहाँ बच्चे के साथ उसकी ममता व आसक्ति है और इस बच्चे के साथ कर्तव्य-भावना जुड़ी है। जहाँ कर्तव्य-भावना होती है, वहाँ हो जाता है कर्मयोग, और जहाँ आसक्ति होती है, वहाँ हो जाता है कर्म।

जब हम दुनिया में कर्म करते हैं, तब मन में कई प्रकार के तनाव पैदा होते हैं। हमारे मन में चिन्ता होती है, घबराहट होती है, कभी अहंकार होता है और कभी खुशी होती है। कर्म का यह परिणाम हम सभी लोगों के साथ होता है। ऐसी अवस्था में हमलोगों के मन पर आघात होते हैं। किसी को रक्तचाप, हृदयाघात, मधुमेह या अन्य बीमारियाँ हो जाती हैं। कर्म करते-करते शरीर और मन पर जो चोट पहुँचती है, उससे आदमी को पागलपन से लेकर कैंसर तक कोई भी बीमारी हो सकती है। इस अवस्था को सन्तुलित करने हेतु एक-दो घण्टे भजन करने के लिए कहा जाता है। इस समय तुम जो पूजा-पाठ करते हो, मंदिर में जाते हो या गीता-रामायण-श्रीमद्भागवत पढ़ते हो, उसका यही प्रयोजन है कि कर्मफल का मन पर कोई प्रभाव न हो।

कर्म के साथ भक्ति का कोई विरोधाभास नहीं है। विरोधाभास तो तब होता है, जब हम लोग भक्ति या कर्म में से किसी एक को बहुत अधिक प्रधानता देते हैं। इसलिए आपको अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वाह करते हुए कुछ समय भक्ति के लिए भी देना चाहिए।

जीवन और जीवनशैली

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे दादा गुरु, स्वामी शिवानन्द जी ने हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी को योग में दीक्षित कर उन्हें यौगिक अनुभव प्रदान किया। जब श्री स्वामीजी को स्वामी शिवानंद जी से योग का नगर-नगर डगर-डगर प्रचार करने का आदेश मिला, तो उन्होंने स्वामी शिवानंद जी से कहा, 'मुझे योग की कोई जानकारी या समझ नहीं है। मैं बस इधर-उधर की छोटी-मोटी चीजें जानता हूँ, लेकिन योग की कोई गहन समझ नहीं है।' इसके बाद स्वामी शिवानन्द जी ने श्री स्वामीजी को क्रिया योग में दीक्षा दी। यह क्रिया योग की विधि नहीं, बल्कि क्रिया योग की अनुभूति थी, जिसे केवल एक योग्य गुरु ही एक योग्य शिष्य को दे सकता है, और इसे शास्त्रीय भाषा में शक्तिपात कहा जाता है।

ऋषिकेश में अपना गुरु आश्रम छोड़ने के बाद श्री स्वामीजी नौ वर्षों तक पूरे भारत में यात्रा करते रहे। उन्होंने तुरंत ही कोई योग संस्थान स्थापित करके अपना योग कार्य शुरू नहीं किया। उन्होंने किसी से यह कहते हुए संपर्क नहीं किया कि 'मुझे गुरु से आदेश मिला है, मैं यह सब करने जा रहा हूँ, आपको मेरी मदद करनी होगी।' नहीं, नौ वर्षों तक वे बस यात्रा करते रहे और अपनी यात्राओं के दौरान उन्हें स्वस्थ और बीमार, प्रबुद्ध और अज्ञानी, अच्छे और बुरे, हर प्रकार के लोग मिले। लोगों की जरूरतों का आकलन करने के साथ-साथ वे योग के अध्ययन और अनुभव में संलग्न हुए।

सत्यानंद योग का विकास

जब श्री स्वामीजी ने 1963 में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की तो उस समय उन्होंने हमें जो योग सिखाया, वह सत्यानंद योग नहीं था जिसे आज आप सभी सीखते या सिखाते हैं। उन्होंने हमें कुछ ऐसा सिखाया जिसे आज हम योग चक्र कहते हैं, और यह योग में निरन्तर प्रगति बनाए रखने के बारे में उनकी सोच थी। उनकी समझ स्पष्ट थी कि योग चक्र की विधियाँ साधक को कहाँ से कहाँ तक ले जा सकती हैं। आरम्भ और अंत, दोनों ही अद्वितीय और अद्भुत हैं। आश्रम में आने पर हमें इसी योग चक्र से परिचित कराया गया और जिस तरह से उन्होंने हमें प्रशिक्षित किया वह भी अनुपम था।

मान लीजिए कि कल आसन कक्षा में लगभग एक सौ लोग आते हैं। अगर मैं आपसे एक आसन का अभ्यास करने के लिए कहूँ और तब तक न हिलने के लिए कहूँ जब तक मैं आकर आपकी जाँच न कर लूँ, तो कक्षा में सभी को जाँचने में कितना समय लगेगा? इतना समय हम एक ही आसन में बिताया करत थे। परिणामस्वरूप, हमने बहुत जल्द ही हर आसन में महारत हासिल कर ली। यह निश्चित रूप से कष्टदायक था। कल्पना कीजिए कि आप पहली बार मयूरासन कर रहे हैं, केहुनियाँ पेट में गड़ रही हैं, और तब तक उस स्थिति को बनाए रख रहे हैं जब तक कक्षा में प्रत्येक व्यक्ति की स्थिति ठीक न कर ली जाए!

योग से हमारा परिचय योग चक्र के माध्यम से हुआ। सन् 1968 में परमहंसजी को दिए गए नामों में से एक था – *योग चक्र कलानिधि*। योग चक्र एक संपूर्ण प्रणाली थी जिसे श्री स्वामीजी ने स्वामी शिवानंद जी के

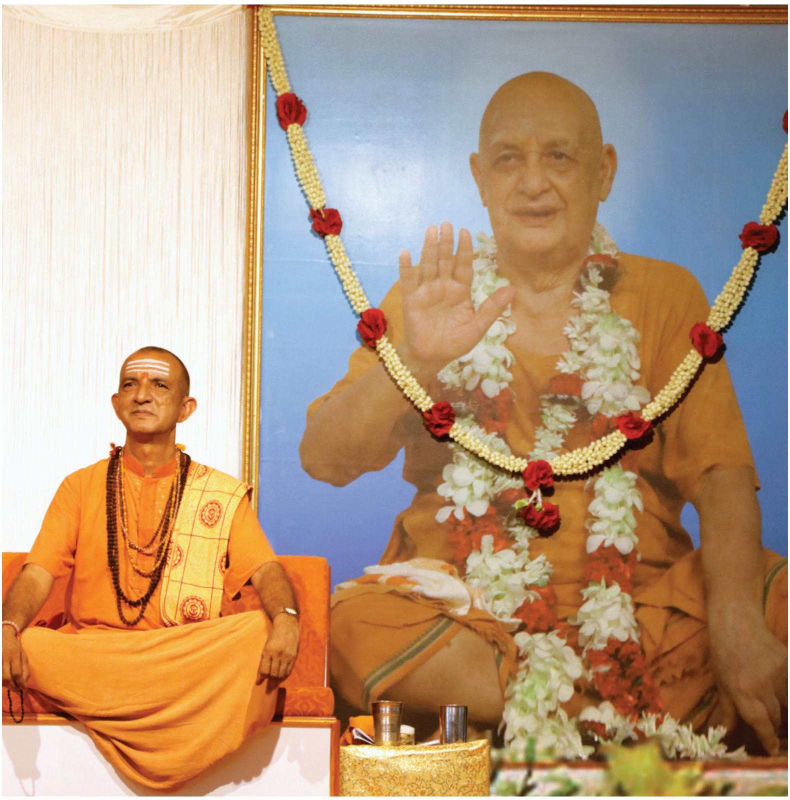

निर्देशानुसार लोगों की बुद्धि, भावना और कर्म की क्षमताओं को विकसित करने हेतु विशिष्ट वर्गों में बाँटा था। इस योग चक्र में छह अंग थे। तीन अंगों का एक समूह उन योगों का प्रतिनिधित्व करता था जिनका अभ्यास शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उत्थान के लिए किया जा सकता था। ये तीन हठयोग, राजयोग और क्रियायोग थे। हठयोग और राजयोग के नियमित प्रशिक्षण के अलावा श्री स्वामीजी ने 1970 के दशक में क्रियायोग का तीन वर्षीय पत्राचार पाठ्यक्रम भी शुरू किया। क्रियायोग कोई नई चीज नहीं, बल्कि योग चक्र प्रणाली का एक अभिन्न अंग है।

जब हम योग सिखाने के लिए दुनिया भर में गए तो हम अनेक प्रकार के लोगों से मिले। उनमें से अधिकांश लोग योग चक्र के सभी अभ्यास नहीं कर सकते थे। इसलिए योग चक्र के सिद्धान्त को किनारे करके केवल उन्हीं अभ्यासों का चयन किया गया जिन्हें समाज का हर व्यक्ति स्वास्थ्य, शान्ति और एकाग्रता की क्षमता विकसित करने के लिए अपना सके, और अगर नियति ने अनुमति दी, तो ध्यान के मार्ग पर बढ़ सके। योग चक्र से बुनियादी, सरल अभ्यासों का चयन किया गया और उन्हें दुनिया भर में पचास वर्षों तक सिखाया गया, जिन्हें बाद में सत्यानंद योग के रूप में पहचाना गया।

सत्यानंद योग तो एक छोटा-सा हिस्सा है, योग चक्र की व्यापक अवधारणा का। इसके लिए चुने गए अभ्यासों में आसनों के प्रारम्भिक और माध्यमिक समूह, खड़े होकर किये जाने वाले और संतुलन के आसन, आगे और पीछे झुकने वाले आसन ही शामिल हैं। उच्च स्तर के या उल्टे होकर किये जाने वाले ज्यादा आसन नहीं हैं। उच्च आसन सिखाने का तो सवाल ही नहीं उठता क्योंकि सत्यानंद योग परंपरा में कोई मयूरासन, वृश्चिकासन या शीर्षासन का अभ्यास नहीं करता। आप इन अभ्यासों को कक्षा में नहीं सिखाते। इसलिए कोई उच्च अभ्यास नहीं हैं, केवल बुनियादी आसनों के पाँच-छह समूह हैं।

प्राणायाम के पूरे समूह में से तीन-चार अभ्यासों पर ही लोगों का ध्यान गया है – नाड़ी शोधन, भ्रामरी, उज्जायी और शायद कपालभाति या भस्त्रिका। इसके अलावा कोई भी अन्य प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास नहीं करता। राजयोग में प्रत्याहार का जो अभ्यास अधिकांश लोगों को पसंद है, वह है योग निद्रा। इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाने की यह एकमात्र विधि है जो प्रत्याहार की अवस्था तक पहुँचने के इरादे से नहीं, बल्कि आराम करने और सोने के

इरादे से की जाती है। इसके अलावा शायद दो या तीन ध्यान के अभ्यास चुने जाते हैं जैसे अजपा-जप, अंतर्मौन और चिदाकाश धारणा। इसके अलावा सत्यानंद योग में कोई अन्य अभ्यास नहीं है।

सत्यानंद योग का यही दायरा है जिसका अभ्यास दुनिया भर में तब से हो रहा है जब से हमने योग का प्रचार-प्रसार शुरू किया। योग का यह प्रचार-प्रसार बहुत अच्छे ढंग से हुआ और दुनिया भर में हजारों लोगों ने इन सरल अभ्यासों से बहुत लाभ उठाया। आज भी ये अभ्यास उतने ही मान्य हैं जितने पचास साल पहले थे। ये पुराने नहीं हुए हैं। जब हमने योग सिखाना शुरू किया था तब केवल दस-बीस प्रतिष्ठित योग शिक्षक ही थे। 1960 से 1980 के दशक तक योग की तीन-चार मुख्य धाराएँ ही थीं, जैसे सत्यानंद योग, अयंगार योग, शिवानंद योग और कुछ अन्य। जो लोग योग के लिए आते थे, वे केवल शारीरिक या स्वास्थ्य संबंधी कारणों से ही नहीं आते थे।

योग के प्रचार-प्रसार में विभिन्न लहरें आई हैं। 1960 के दशक में योग स्वास्थ्य और सौंदर्य के लिए था। 1970 के दशक में योग ध्यान के एक मार्ग के रूप में लोकप्रिय हुआ। 1980 के दशक में यह तनाव प्रबंधन, अतीन्द्रिय अनुसंधानों और ध्यान के लिए प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार हर दशक में योग के प्रति एक अलग तरह का दृष्टिकोण और भाव रहा है। समय के साथ बहुत-से लोग शिक्षक बन गए, और कोई भी विद्यार्थी या साधक नहीं रहना चाहता था। जहाँ शुरुआती दौर में सौ से भी कम शिक्षक थे, वहीं नये दौर में दुनिया के कोने-कोने में लाखों शिक्षक हो गए।

बदलाव की ओर

2013 में पचास वर्षों के योग प्रचार के बाद सोच-समझकर एक निर्णय लिया गया कि अब आगे योग का प्रचार नहीं किया जाएगा और सत्यानंद योग के पहले अध्याय को समाप्त कर दिया जाएगा जो बिहार योग परंपरा की मुख्य शिक्षा थी। यह निर्णय लिया गया कि योग चक्र को पुनर्जीवित किया जाए जिससे गंभीर योग साधक अपने अनुभव को गहन कर सकें। इस उद्देश्य से योग चक्र सत्संग शृंखला की शुरुआत की गयी।

प्रत्येक योग चक्र कार्यक्रम अलग होता है, पर हर एक का उद्देश्य यही होता है कि योग को एक जीवनशैली के रूप में कैसे अपनाया जा सके। मैं आपसे एक प्रश्न पूछता हूँ – जीवन क्या है? आपके उत्तर शायद कुछ इस

प्रकार होंगे – जीवन साँस लेना और छोड़ना है, जीवन वह है जो आप अभी महसूस करते हैं, जीवन एक अवसर है, जीवन एक सीखने का अनुभव है। ये सब उत्तर सुंदर और अच्छे दर्शन या सिद्धांत को दर्शाते हैं, लेकिन वास्तव में देखा जाए तो जीवन वह है जो आप अपने मन के माध्यम से जीते हैं। अगर आपका मन अच्छा है तो जीवन अच्छा है। अगर आपका मन बुरा है तो जीवन भी बुरा है। अगर आपका मन खुश है तो जीवन खुशहाल है। अगर आपका मन दु:खी है तो जीवन भी दु:खमय है। यही यौगिक समझ है। अन्य उत्तर सिद्धान्त और दर्शन की दृष्टि से सही हो सकते हैं, लेकिन वे वास्तविक नहीं हैं। वास्तविक उत्तर यह है कि जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति वही है जो आप अपने मन में जीते हैं।

योग की संपूर्ण प्रणाली का प्रयोजन शरीर से लेकर प्राण, मन, चेतना और आत्मा रूपी जीवन के सभी आयामों में सामंजस्य स्थापित करना है। हठयोग अन्नमय और प्राणमय कोषों को पोषित करता है, राजयोग मनोमय कोष और आंशिक रूप से विज्ञानमय कोष का ख्याल करता है, क्रियायोग आनंदमय कोष के अनुभव को विकसित करने का प्रयास करता है। ये तीन योग साधक को भौतिक, प्राणमय, मानसिक, अतीन्द्रिय और आध्यात्मिक आयामों से ले जाते हैं। जीवन में इन्हीं को सिद्ध करना है और ये योग चक्र के पहले तीन भाग हैं।

यही साधना बनती है। साधना क्या है? लोग कहते हैं, 'मैं योग का अभ्यास करता हूँ।' यह बिल्कुल गलत कथन है। कोई भी व्यक्ति योग का अभ्यास नहीं करता। आप कहते हैं, 'हाँ, मैं हफ़्ते में तीन बार अपनी योग कक्षा में जाकर योग का अभ्यास करता हूँ।' आप किस योग की बात कर रहे हैं? एरोबिक योग की? फिर तो आप योग की बात नहीं कर रहे हैं। हर शाम आप ध्यान करते हैं और उस पंद्रह मिनट या आधे घंटे के ध्यान में आप अपने श्रेष्ठतम पक्ष का अनुभव करना चाहते हैं। क्या आधे घंटे का ध्यान तनाव, चिंता, निराशा, क्रोध, कामना, उदासी और नकारात्मकता से भरे उन साढ़े तेईस घंटों की भरपाई कर सकता है जिनसे आप गुजरते हैं? ध्यान पलायन का एक तरीका बन जाता है, यह अभ्यास या साधना नहीं है। यह एक काल्पनिक दुनिया में पलायन है जहाँ आप यह महसूस करने की कोशिश करते हैं कि 'मैं अपने मंत्र या किसी अन्य चीज के बारे में सोचकर अपने तनावों, निराशाओं, समस्याओं और कठिनाइयों से दूर हो रहा हूँ'। आप कक्षा में दस-बीस मिनट प्राणायाम

का अभ्यास करते हैं और उससे आश्चर्यजनक परिणामों की उम्मीद करते हैं, जबकि दिनभर आपको इस बात की परवाह तक नहीं होती कि आप कैसे साँस ले रहे हैं। लोग कक्षा में सीखने को ही योग अभ्यास समझते हैं और यह बिल्कुल पाश्चात्य मानसिकता है। यह योग नहीं है।

कक्षा में आप जो सीखते हैं, वे मात्र कुछ बिंदु और संकेत होते हैं जिन्हें आप अपनी दिनचर्या में शामिल कर सकते हैं और यही है यौगिक जीवनशैली। जब आप अपने मन में एक सकारात्मक अवस्था लाकर जीने लगते हैं तो आपका जीवन सकारात्मक हो जाता है। यह कोई सनकभरा बर्ताव नहीं जैसा अभ्यास के साथ होता है। आपको थोड़े लचीलेपन की जरूरत है तो आप योग आसन कर लेते हैं, आपको विश्राम की जरूरत है तो आप थोड़ी योगनिद्रा कर लेते हैं, आप अपनी समस्याओं से बचना चाहते हैं तो एक काल्पनिक ध्यान की दुनिया में चले जाते हैं। नहीं, कक्षा में सीखने से आपको केवल वे उपकरण मिलते हैं जिन्हें आप अपने जीवन में इस्तेमाल कर सकते हैं। जब आप इन शिक्षाओं को लागू करना शुरू करते हैं तो आप योग के परिणामों को अनुभव करना शुरू कर देते हैं, केवल कक्षा में बीस मिनट के लिए नहीं, बल्कि दिनभर। बीस मिनट में अगर आप थोड़ा-सा हल्का महसूस करते हैं तो जरा सोचिए कि जब आप बीस घंटे तक ऐसा कर पाएँगे तो आपको कैसा लगेगा।

इस योग चक्र कार्यक्रम का लक्ष्य जीवनशैली है। मैं चाहता हूँ कि आप जीवनशैली के बारे में थोड़ी गहराई से सोचें। जैसे मैंने आपसे प्रश्न पूछा था कि जीवन क्या है, वैसे ही मैं आपसे एक और प्रश्न पूछ रहा हूँ – जीवनशैली क्या है? पहले प्रश्न का उत्तर था कि जीवन वह है जो आप अपने मन में जीते हैं। दूसरे का उत्तर यह है कि जीवनशैली आपके मन की गुणवत्ता की अभिव्यक्ति है। यदि ये अभ्यास आपको सकारात्मक और बेहतर मानसिक गुणवत्ता से जुड़ने में मदद करते हैं, तो प्रतिदिन आप जिन सामान्य परिस्थितियों से गुजरते हैं, उनके प्रति आपकी प्रतिक्रियाएँ पहले की अपेक्षा अलग होंगी। यह एक रचनात्मक अभिव्यक्ति और भागीदारी है जो आपको निराशाओं और तनावों से रहित एक बेहतर और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने में मदद करती है।

जब मैंने क्रोध प्रबंधन पर आधारित पुस्तक, 'ट्रांसफॉर्मिंग क्रोध' का जिक्र किया था तो मैंने देखा कि लगभग नब्बे प्रतिशत लोग अपना सिर हिला रहे हैं। इसका मतलब यह कि हर कोई क्रोध के बारे में सोच रहा है, उसका सामना कर रहा है। लेकिन किसी ने भी अपने क्रोध को जिया नहीं है, सब कुछ दबा

हुआ है। हम जो अनुभव करते हैं वह चिड़चिड़ापन और निराशा है जो क्रोध को दबाकर होती है। अंतत: जब क्रोध उबलकर फूटता है तो वह अनियंत्रित, हिंसक, आक्रामक और विनाशक होता है। अगर स्थिति इस स्तर तक पहुँच जाती है तो यह विवेक बुद्धि के अभाव को दर्शाती है।

एक सरल नियम है जिसका पालन प्रकृति भी करती है और आप भी – ग्रहण, पाचन और निष्कासन। आप कुछ खाते हैं, उसे पचाते हैं, और फिर अपशिष्ट तत्त्व को बाहर निकालते हैं। यदि आप अपशिष्ट को अपने शरीर में जमा करते रहेंगे तो परिणाम क्या होगा? अस्वस्थता और बीमारी। अपना स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए शरीर को प्रतिदिन नकारात्मक, विषाक्त, अपशिष्ट पदार्थों को बाहर निकालना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो यह बीमारी का संकेत है। क्या मन भी इसी नियम का पालन करता है? आप अपने मन से ग्रहण करते हैं, अपने मन से ही आत्मसात् करते हैं, पर मन से उसे बाहर नहीं निकालते। परिणामस्वरूप प्रत्येक मन एक कब्जग्रस्त मन है। केवल मानसिक शंखप्रक्षालन ही इस मानसिक कब्ज को दूर करने में मदद कर सकता है।

हालाँकि मैं यह बात व्यंग्य के रूप में कह रहा हूँ, लेकिन वास्तव में यह चिंता का विषय है क्योंकि मन का अपशिष्ट उत्पाद कभी निष्कासित नहीं होता। जब घरों का अपशिष्ट उत्पाद धरती को ढक लेता है तो आपको सतह पर क्या दिखाई देता है? प्लास्टिक और कचरे का बड़ा ढेर। प्रत्येक मनुष्य उस कचरे के ढेर का प्रतिनिधित्व करता है जिसका अनुभव हम अपनी कुंठाओं, चिंताओं, इच्छाओं, राग-द्वेष, अपेक्षाओं और षड् रिपुओं की अभिव्यक्ति के माध्यम से करते हैं। यही वह कचरा है जिसे हटाना है। योग के अभ्यास से मन के षड् रिपुओं के रंगों को हटाना है। इन रंगों को हटाने की प्रक्रिया आपकी जीवनशैली का हिस्सा बन जाती है और यही यौगिक जीवनशैली का ध्येय है।

हमें जीवनशैली की विचारधारा को यौगिक दृष्टिकोण से देखना है। एक सरल वाक्य के रूप में हम कह सकते हैं कि जीवनशैली सकारात्मक एवं रचनात्मक क्रिया, व्यवहार और विचार की अभिव्यक्ति है। जब ये जीवन में स्वाभाविक अभिव्यक्तियाँ बन जाती हैं तब ऐसी जीवनशैली संसार में सक्रिय रहने और साथ ही मन में शांति बनाए रखने में सहायक होती है। एक बार यह प्राप्त हो जाए तो यौगिक यात्रा शुरू हो जाती है।

– 17 दिसंबर 2019, योग चक्र सत्संग शृंखला, गंगा दर्शन

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान किसी भी निम्नलिखित लिंक पर क्लिक करके दिया जा सकता है।

SB Collect Online **HDFC Online**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

योग चक्र चन्द्रिका

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 70, ISBN: 978-81-949328-1-9

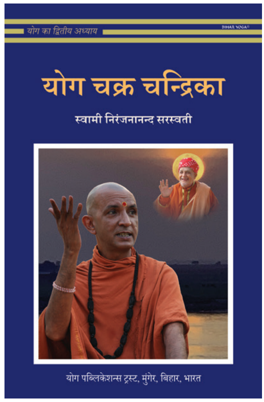

उपलब्ध

यह पुस्तक गंगा दर्शन विश्व योगपीठ में जुलाई 2021 में युवा योग मित्र मण्डल के लिए आयोजित योग शिक्षा सत्र में स्वामीजी द्वारा दिए सत्संगों का संकलन है। इन सत्संगों में स्वामीजी ने योग चक्र विचारधारा की विहंगम व्याख्या प्रस्तुत करते हुए योग के साधनात्मक तथा व्यवहारात्मक आयामों को उद्घाटित किया है। योग के प्रादुर्भाव पर प्रकाश डालकर उन्होंने क्रमश: हठयोग, राजयोग, क्रियायोग, कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग के विषयों को सरल, सुबोध एवं व्यावहारिक ढंग से निरूपित किया है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 9162783904, 9835892831 या **www.satyamyogaprasad.net** वेबसाइट देखें।

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर उपलब्ध हैं जिन्हें इस QR code को स्कैन करके देखा जा सकता है। ये *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

स्वस्थ जीवन हेतु रचित यह कार्यक्रम *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

• Registered with the Registrar of Newspapers, India
Under No. BIHHIN/2002/6306

ISSN 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2026

योगपीठ कार्यक्रम

नवम्बर 19–22	*पद्म जयन्ती – योगनिद्रा संगोष्ठी*
दिसम्बर 27–31	*पद्म जयन्ती – यौगिक जीवनशैली महोत्सव*
प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

सितम्बर 28–अक्टूबर 6	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 11–19	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 25–नवम्बर 2	*क्रिया योग एवं तत्त्व शुद्धि प्रशिक्षण*
अक्टूबर 2026–अक्टूबर 2027	*संन्यास जीवनशैली अनुभव (अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर–दिसम्बर	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए तथा योगविद्या पत्रिका को ऑनलाइन देखने के लिए बिहार योग की वेबसाइट – biharyoga.net पर जायें या बगल के QR code को स्कैन करें